नमो नमो निम्मलदंसणस्स

बाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथाय नम:

पूज्य आनन्द-क्षमा-ललित-सुशील-सुधर्मसागर-गुरूभ्यो नम:

आगम-११

विपाकश्रुत

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

अनुवादक एवं सम्पादक

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

आगम हिन्दी-अनुवाद-श्रेणी पुष्प-११

आगमसूत्र-११- 'विपाकश्रुत'

अंगसूत्र-११ -हिन्दी अनुवाद

कहां क्या देखे ?

क्रम	विषय	पृष्ठ	क्रम	विषय	पृष्ठ
	दु:खविपाक (श्रुतस्कन्ध- १)	०५		सुखविपाक (श्रुतस्कन्ध- २)	०५
०१	मृगापुत्र	०५	०१	सुबाहु	४३
०२	उज्झितक	११	०२	भद्रनंदि	४७
०३	अभग्नसेन	१६	०३	सुजात	४७
०४	सगड	२२	०४	सुवासव	४८
०५	बृहस्पतिदत्त	२५	०५	जिनदास	४८
०६	नंदीवर्धन	२७	०६	वैश्रमण	४९
०७	उंबरदत्त	३०	०७	महाबल	४९
०८	शौर्यदत्त	३४	०८	भद्रनंदी	५०
०९	देवदत्ता	३६	०९	महचन्द्र	५०
१०	अंजू	४१	१०	वरदत्त	५१

४५ आगम वर्गीकरण						
क्रम	आगम का नाम	सूत्र		क्रम	आगम का नाम	सूत्र
०१	आचार	अंगसूत्र-१		२५	आतुरप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-२
०२	सूत्रकृत्	अंगसूत्र-२		२६	महाप्रत्याख्यान	पयन्नासूत्र-३
०३	स्थान	अंगसूत्र-३		२७	भक्तपरिज्ञा	पयन्नासूत्र-४
०४	समवाय	अंगसूत्र-४		२८	तंदुलवैचारिक	पयन्नासूत्र-५
०५	भगवती	अंगसूत्र-५		२९	संस्तारक	पयन्नासूत्र-६
०६	ज्ञाताधर्मकथा	अंगसूत्र-६		३०.१	गच्छाचार	पयन्नासूत्र-७
०७	उपासकदशा	अंगसूत्र-७		३०.२	चन्द्रवेध्यक	पयन्नासूत्र-७
०८	अंतकृत् दशा	अंगसूत्र-८		३१	गणिविद्या	पयन्नासूत्र-८
०९	अनुत्तरोपपातिकदशा	अंगसूत्र-९		३२	देवेन्द्रस्तव	पयन्नासूत्र-९
१०	प्रश्नव्याकरणदशा	अंगसूत्र-१०		३३	वीरस्तव	पयन्नासूत्र-१०
११	विपाकश्रुत	अंगसूत्र-११		३४	निशीथ	छेदसूत्र-१
१२	औपपातिक	उपांगसूत्र-१		३५	बृहत्कल्प	छेदसूत्र-२
१३	राजप्रश्निय	उपांगसूत्र-२		३६	व्यवहार	छेदसूत्र-३
१४	जीवाजीवाभिगम	उपांगसूत्र-३		३७	दशाश्रुतस्कन्ध	छेदसूत्र-४
१५	प्रज्ञापना	उपांगसूत्र-४		३८	जीतकल्प	छेदसूत्र-५
१६	सूर्यप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-५		३९	महानिशीथ	छेदसूत्र-६
१७	चन्द्रप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-६		४०	आवश्यक	मूलसूत्र-१
१८	जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति	उपांगसूत्र-७		४१.१	ओघनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
१९	निरयावलिका	उपांगसूत्र-८		४१.२	पिंडनिर्युक्ति	मूलसूत्र-२
२०	कल्पवतंसिका	उपांगसूत्र-९		४२	दशवैकालिक	मूलसूत्र-३
२१	पुष्पिका	उपांगसूत्र-१०		४३	उत्तराध्ययन	मूलसूत्र-४
२२	पुष्पचूलिका	उपांगसूत्र-११		४४	नन्दी	चूलिकासूत्र-१
२३	वृष्णिदशा	उपांगसूत्र-१२		४५	अनुयोगद्वार	चूलिकासूत्र-२
२४	चतु:शरण	पयन्नासूत्र-१		---	----------	-----

मुनि दीपरत्नसागरजी प्रकाशित साहित्य

आगम साहित्य			आगम साहित्य		
क्र	साहित्य नाम	बूक्स	क्रम	साहित्य नाम	बू
1	मूल आगम साहित्य:-	147	6	आगम अन्य साहित्य:-	10
	-1- आगमसुत्ताणि-मूलं print	[49]		-1- આગમ કથાનુયોગ	06
	-2- आगमसुत्ताणि-मूलं Net	[45]		-2- आगम संबंधी साहित्य	02
	-3- आगममञ्जूषा (मूल प्रत)	[53]		-3- ऋषिभाषित सूत्राणि	01
2	आगम अनुवाद साहित्य:-	165		-4- आगमिय सूक्तावली	01
	-1- આગમસૂત્ર ગુજરાતી અનુવાદ	[47]		आगम साहित्य- कुल पुस्तक	516
	-2- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद Net	[47]			
	-3- AagamSootra English Trans.	[11]			
	-4- આગમસૂત્ર સટીક ગુજરાતી અનુવાદ	[48]			
	-5- आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद print	[12]		अन्य साहित्य:-	
3	आगम विवेचन साहित्य:-	171	1	તત્ત્વાભ્યાસ સાહિત્ય-	13
	-1- आगमसूत्र सटीकं	[46]	2	સૂત્રાભ્યાસ સાહિત્ય-	06
	-2- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-1	[51]	3	વ્યાકરણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगमसूत्राणि सटीकं प्रताकार-2	[09]	4	વ્યાખ્યાન સાહિત્ય-	04
	-4- आगम चूर्णि साहित्य	[09]	5	જિનભક્તિ સાહિત્ય-	09
	-5- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-1	[40]	6	વિધિ સાહિત્ય-	04
	-6- सवृत्तिक आगमसूत्राणि-2	[08]	7	આરાધના સાહિત્ય	03
	-7- सचूर्णिक आगमसुत्ताणि	[08]	8	પરિચય સાહિત્ય-	04
4	आगम कोष साहित्य:-	14	9	પૂજન સાહિત્ય-	02
	-1- आगम सद्दकोसो	[04]	10	તીર્થંકર સંક્ષિપ્ત દર્શન	25
	-2- आगम कहाकोसो	[01]	11	પ્રકીર્ણ સાહિત્ય-	05
	-3- आगम-सागर-कोष:	[05]	12	દીપરત્નસાગરના લઘુશોધનિબંધ	05
	-4- आगम-शब्दादि-संग्रह (प्रा-सं-गु)	[04]		આગમ સિવાયનું સાહિત્ય કૂલ પુસ્તક	85
5	आगम अनुक्रम साहित्य:-	09			
	-1- આગમ વિષયાનુક્રમ- (મૂળ)	02		1-आगम साहित्य (कुल पुस्तक)	51
	-2- आगम विषयानुक्रम (सटीकं)	04		2-आगमेतर साहित्य (कुल	08
	-3- आगम सूत्र-गाथा अनुक्रम	03		दीपरत्नसागरजी के कुल प्रकाशन	60

મુનિ દીપરત્નસાગરનું સાહિત્ય

1	મુનિ દીપરત્નસાગરનું આગમ સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 516]	તેના કુલ પાના [98,300]
2	મુનિ દીપરત્નસાગરનું અન્ય સાહિત્ય	[કુલ પુસ્તક 85]	તેના કુલ પાના [09,270]
3	મુનિ દીપરત્નસાગર સંકલિત 'તત્ત્વાર્થસૂત્ર'ની વિશિષ્ટ DVD		તેના કુલ પાના [27,930]

અમારા પ્રકાશનો કુલ ૬૦૧ + વિશિષ્ટ DVD કુલ પાના 1,35,500

[११] विपाकश्रुत
अंगसूत्र-११- हिन्दी अनुवाद

* श्रुतस्कन्ध–१ *
अध्ययन-१ – मृगापुत्र

सूत्र - १

उस काल तथा उस समय में चम्पा नाम की एक नगरी थी । उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी के शिष्य–जातिसम्पन्न यावत् चौदह पूर्वों के ज्ञाता, चार ज्ञान के धारक, पाँच सौ अनगारों से घिरे हुए सुधर्मा अनगार-मुनि क्रमशः विहार करते हुए चम्पानगरी के पूर्णभद्र नामक चैत्य-उद्यान में विचरने लगे । धर्म-कथा सूनने के लिए जनता वहाँ आई । धर्मकथा श्रवण कर और हृदय में अवधारण कर जिस ओर से आई थी उसी ओर चली गई । उस काल उस समय में आर्य सुधर्मास्वामी के शिष्य जम्बूस्वामी थे, जो सात हाथ प्रमाण शरीर वाले तथा गौतमस्वामी के समान थे । यावत् बिराजमान हो रहे हैं । तदनन्तर जातश्रद्ध यावत् जिस स्थान पर आर्य सुधर्मा स्वामी बिराजमान थे, उसी स्थान पर पधार गए । तीन बार प्रदक्षिणा करने के पश्चात् वन्दना-नमस्कार करके इस प्रकार बोले–

सूत्र – २, ३

हे भगवन् ! यदि मोक्ष को प्राप्त हुए श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने प्रश्नव्याकरण नामक दसवें अङ्ग का यह अर्थ प्रतिपादित किया है तो विपाकश्रुत नामक ग्यारहवे अङ्ग का यावत् क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ? तदनन्तर आर्य सुधर्मास्वामी ने श्री जम्बू अनगार को इस प्रकार कहा–हे जम्बू ! मोक्षसंलब्ध भगवान श्री महावीर स्वामी ने विपाकश्रुत नामके ग्यारहवे अङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध प्रतिपादित किए हैं, जैसे कि–दुःखविपाक और सुख-विपाक । हे भगवन् ! यदि मोक्ष को उपलब्ध श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने विपाकश्रुत संज्ञक एकादशवे अङ्ग के दुःखविपाक और सुखविपाक नामक दो श्रुतस्कन्ध कहे हैं, तो हे प्रभो ! दुःखविपाक नामक प्रथम श्रुतस्कन्ध के कितने अध्ययन प्रतिपादित किए हैं ? तत्पश्चात् आर्य सुधर्मास्वामी ने अपने अन्तेवासी श्री जम्बू अनगार को इस प्रकार कहा–हे जम्बू ! दुःखविपाक के दस अध्ययन फरमाये हैं, जैसे कि– मृगापुत्र, उज्झितक, अभग्नसेन, शकट, बृहस्पति, नन्दिवर्धन, उम्बरदत्त, शौरिकदत्त, देवदत्ता और अञ्जू ।

सूत्र - ४

अहो भगवन् ! यदि धर्म की आदि करने वाले, तीर्थप्रवर्तक मोक्ष को समुपलब्ध श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने दुःखविपाक के मृगापुत्र से लेकर अञ्जू पर्यन्त दस अध्ययन कहे हैं तो, प्रभो ! दुःखविपाक के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? हे जम्बू ! उस काल उस समय में मृगाग्राम नाम का एक नगर था । उस नगर के बाहर ईशान कोण में सब ऋतुओं में होने वाले फल पुष्प आदि से युक्त चन्दन-पादप नामक एक उपवन था । उस उद्यानमें सुधर्मा नामक यक्ष का एक पुरातन यक्षायतन था जिसका वर्णन पूर्णभद्र यक्षायतन की तरह समझ लेना ।

सूत्र - ५

उस मृगाग्राम नामक नगर में विजय नामका एक क्षत्रिय राजा था । उसकी मृगा नामक रानी थी । उस विजय क्षत्रिय का पुत्र और मृगा देवी का आत्मज मृगापुत्र नामका एक बालक था । वह बालक जन्म के समय से ही अन्धा, गूँगा, बहरा, लूला, हुण्ड था । वह वातरोग से पीड़ित था । उसके हाथ, पैर, कान, आँख और नाक भी न थे । इन अंगोपांगों का केवल आकार ही था और वह आकार-चिह्न भी नाम-मात्र का था । वह मृगादेवी गुप्त भूमिगृह में गुप्तरूप से आहारादि के द्वारा उस बालक का पालन-पोषण करती हुई जीवन बिता रही थी । उस

मृगाग्राम में एक जन्मान्ध पुरुष रहता था । आँखों वाला एक व्यक्ति उसकी लकड़ी पकड़े रहा रहता था । उसके मस्तक के बाल बिखरे हुए थे । उसके पीछे मक्खियों के झुण्ड भिनभिनाते रहते थे । ऐसा वह जन्मान्ध पुरुष मृगाग्राम नगर के घर-घर में कारुण्यमय भिक्षावृत्ति से अपनी आजीविका चला रहा था ।

उस काल तथा उस समय में श्रमण भगवान महावीर पधारे । जनता दर्शनार्थ नीकली । तदनन्तर विजय नामक क्षत्रिय राजा भी महाराजा कूणिक की तरह नगर से चला यावत् समवसरण में जाकर भगवान की पर्युपासना करने लगा । तदनन्तर वह जन्मान्ध पुरुष नगर के कोलाहलमय वातावरण को जानकर उस पुरुष के प्रति इस प्रकार बोला–हे देवानुप्रिय ! क्या आज मृगाग्राम नगर में इन्द्र-महोत्सव है ? यावत् नगर के बाहर जा रहे हैं? उस पुरुष ने जन्मान्ध से कहा–आज इस गाम में इन्द्रमहोत्सव नहीं है किन्तु श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं; वहाँ ये सब जा रहे हैं । तब उस जन्मान्ध पुरुष ने कहा–'चलो, हम भी चलें और भगवान की पर्युपासना करें । तदनन्तर दण्ड के द्वारा आगे को ले जाया जाता हुआ वह जन्मान्ध पुरुष जहाँ पर श्रमण भगवान महावीर बिराजमान थे वहाँ पर आ गया । तीन बार प्रदक्षिणा करता है । वंदन-नमस्कार करता है । भगवान की पर्युपासना में तत्पर हुआ । तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने विजय राजा तथा नगर-जनत को धर्मोपदेश दिया । यावत् कथा सूनकर विजय राजा तथा परिषद् यथास्थान चले गए ।

सूत्र - ६

उस काल तथा उस समय में श्रमण भगवान महावीर के प्रधान शिष्य इन्द्रभूति नाम के अनगार भी वहाँ बिराजमान थे । गौतमस्वामी ने उस जन्मान्ध पुरुष को देखा । जातश्रद्ध गौतम इस प्रकार बोले–'अहो भगवन् ! क्या कोई ऐसा पुरुष भी है कि जो जन्मान्ध व जन्मान्धरूप हो ?' भगवान ने कहा–'हाँ, है !' 'हे प्रभो ! वह पुरुष कहाँ है ?' भगवान ने कहा–'हे गौतम ! इसी मृगाग्राम नगर में विजयनरेश का पुत्र और मृगादेवी का आत्मज मृगा-पुत्र नाम का बालक है, जो जन्मतः अन्धा तथा जन्मान्धरूप है । उसके हाथ, पैर, चक्षु आदि अङ्गोपाङ्ग भी नहीं है। मात्र उन अङ्गोंपाङ्गों के आकार ही हैं । उसकी माता मृगादेवी उसका पालन-पोषण सावधानी पूर्वक छिपे-छिपे कर रही है । तदनन्तर भगवान गौतम ने भगवान महावीर स्वामी के चरणों में वन्दन-नमस्कार किया । उनसे बिनती की–'हे प्रभो ! यदि आपकी अनुज्ञा प्राप्त हो तो मैं मृगापुत्र को देखना चाहता हूँ ।' भगवान ने फरमाया–'गौतम ! जैसे तुम्हें सुख उपजे वैसा करो ।'

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर के द्वारा आज्ञा प्राप्त कर प्रसन्न व सन्तुष्ट हुए श्री गौतमस्वामी भगवान के पास से नीकले । विवेकपूर्वक भगवान गौतम स्वामी जहाँ मृगाग्राम नगर था वहाँ आकर नगर में प्रवेश किया । क्रमशः जहाँ मृगादेवी का घर था, गौतम स्वामी वहाँ पहुँच गए । तदनन्तर उस मृगादेवी ने भगवान गौतमस्वामी को आते हुए देखा और देखकर हर्षित प्रमुदित हुई, इस प्रकार कहने लगी–'भगवन् ! आपके पधारने का क्या प्रयोजन है ?' गौतम स्वामी ने कहा–'हे देवानुप्रिये ! मैं तुम्हारे पुत्र को देखने आया हूँ !' तब मृगादेवी ने मृगापुत्र के पश्चात् उत्पन्न हुए चार पुत्रों को वस्त्र-भूषणादि से अलंकृत करके गौतमस्वामी के चरणों में रखा और कहा–'भगवन् ! ये मेरे पुत्र हैं; इन्हें आप देख लीजिए ।' भगवान गौतम मृगादेवी से बोले–हे देवानुप्रिये ! मैं तुम्हारे इन पुत्रों को देखने के लिए यहाँ नहीं आया हूँ, किन्तु तुम्हारा जो ज्येष्ठ पुत्र मृगापुत्र है, जो जन्मान्ध व जन्मान्धरूप है, तथा जिसको तुमने एकान्त भूमिगृह में गुप्तरूप से सावधानी पूर्वक रखा है और छिपे-छिपे खानपान आदि के द्वारा जिसके पालन-पोषण में सावधान रह रही हो, उसी को देखने मैं यहाँ आया हूँ । यह सुनकर मृगादेवी ने गौतम से निवेदन किया कि–वे कौन तथारूप ऐसे ज्ञानी व तपस्वी हैं, जिन्होंने मेरे द्वारा एकान्त गुप्त रखी यह बात आपको यथार्थरूप में बता दी । जिससे आपने यह गुप्त रहस्य सरलता से जान लिया ? तब भगवान गौतम स्वामी ने कहा–हे भद्रे ! मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर ने ही मुझे यह रहस्य बताया है ।

जिस समय मृगादेवी भगवान गौतमस्वामी के साथ वार्तालाप कर रही थी उसी समय मृगापुत्र दारक के भोजन का समय हो गया । तब मृगादेवी ने भगवान गौतमस्वामी से निवेदन किया–'भगवन् ! आप यहीं ठहरीये, मैं

अभी मृगापुत्र बालक को दिखलाती हूँ ।' इतना कहकर वह जहाँ भोजनालय था, वहाँ आकर वस्त्र-परिवर्तन करती है । लकड़े की गाड़ी ग्रहण करती है और उसमें योग्य परिमाण में अशन, पान, खादिम व स्वादिम आहार भरती है । तदनन्तर उस काष्ठ-शकट को खींचती हुई जहाँ भगवान गौतमस्वामी थे वहाँ आकर निवेदन करती है–'प्रभो ! आप मेरे पीछे पधारें । मैं आपको मृगापुत्र दारक बताती हूँ ।' गौतमस्वामी मृगादेवी के पीछे-पीछे चलने लगे । तत्पश्चात् वह मृगादेवी उस काष्ठ-शकट को खींचती-खींचती भूमिगृह आकर चार पड़ वाले वस्त्र से मुँह को बाँधकर भगवान गौतमस्वामी से निवेदन करने लगी–'हे भगवन् ! आप भी मुँह को बाँध लें ।' मृगादेवी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भगवान गौतमस्वामी ने भी मुख-वस्त्रिका से मुख को बाँध लिया । तत्पश्चात् मृगादेवी ने पराङ्मुख होकर जब उस भूमिगृह के दरवाजे को खोला उसमें से दुर्गन्ध नीकलने लगी । वह गन्ध मरे हुए सर्प यावत् उससे भी अधिक अनिष्ट थी।

तदनन्तर उस महान अशन, पान, खादिम, स्वादिम के सुगन्ध से आकृष्ट व मूर्च्छित हुए उस मृगापुत्र ने मुख से आहार किया । शीघ्र ही वह नष्ट हो गया, वह आहार तत्काल पीव व रुधिर के रूप में परिवर्तित हो गया । मृगापुत्र दारक ने पीव व रुधिर रूप में परिवर्तित उस आहार का वमन कर दिया । वह बालक अपने ही द्वारा वमन किये हुए उस पीव व रुधिर को भी खा गया । मृगापुत्र दारक की ऐसी दशा को देखकर भगवान गौतमस्वामी के मन में ये विकल्प उत्पन्न हुए–अहो ! यह बालक पूर्वजन्मों के दुश्चीर्ण व दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पापकर्मों के पापरूप फल को पा रहा है । नरक व नारकी तो मैंने नहीं देखे, परन्तु यह मृगापुत्र सचमुच नारकीय वेदनाओं का अनुभव करता हुआ प्रतीत हो रहा है । इन्हीं विचारों से आक्रान्त होते हुए भगवान गौतम ने मृगादेवी से पूछकर कि अब मैं जा रहा हूँ, उसके घर से प्रस्थान किया । मृगाग्राम नगर के मध्यभाग से चलकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी बिराजमान थे; वहाँ पधारकर प्रदक्षिणा करके वन्दन तथा नमस्कार किया और इस प्रकार बोले–भगवन् ! आपश्री से आज्ञा प्राप्त करके मृगाग्राम नगर के मध्यभाग से चलता हुआ जहाँ मृगादेवी का घर था वहाँ में पहुँचा । मुझे आते हुए देखकर मृगादेवी हृष्ट तुष्ट हुई यावत् पीव व शोणित-रक्त का आहार करते हुए मृगापुत्र को देखकर मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ–अहह ! यह बालक पूर्वजन्मोपार्जित महापापकर्मों का फल भोगता हुआ बीभत्स जीवन बिता रहा है ।

सूत्र – ७, ८

भगवन् ! यह पुरुष मृगापुत्र पूर्वभव में कौन था ? किस नाम व गोत्र का था ? किस ग्राम अथवा नगर का रहने वाला था ? क्या देकर, क्या भोगकर, किन-किन कर्मों का आचरण कर और किन-किन पुराने कर्मों के फल को भोगता हुआ जीवन बिता रहा है ? श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम को कहा–'हे गौतम ! उस काल तथा उस समय में इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष में शतद्वार नामक एक समृद्धिशाली नगर था । उस नगर में धनपति नाम का एक राजा राज्य करता था । उस नगर से कुछ दूरी पर अग्निकोण में विजयवर्द्धमान नामक एक खेट नगर था जो ऋद्धि-समृद्धि आदि से परिपूर्ण था । उस विजयवर्द्धमान खेट का पाँच सौ ग्रामों का विस्तार था । उस खेट में इक्काई नाम का राष्ट्रकूट था, जो परम अधार्मिक यावत् दुष्प्रत्यानन्दी था । वह एकादि विजयवर्द्धमान खेट के पाँच सौ ग्रामों का आधिपत्य करता हुआ जीवन बिता रहा था ।

तदनन्तर वह एकादि नाम का प्रतिनिधि विजयवर्द्धमान खेट के पाँच सौ ग्रामों को करों–महसूलों से, करों की प्रचुरता से, किसानों को दिये धान्यादि के द्विगुण आदि के ग्रहण करने से, रिश्वत से, दमन से, अधिक ब्याज से, हत्यादि के अपराध लगा देने से, धन-ग्रहण के निमित्त किसी को स्थान आदि का प्रबन्धक बना देने से, चोर आदि व्यक्तियों के पोषण से, ग्रामादि को जलाने से, पथिकों को मार-पीट करने से, व्यथित–पीड़ित करता हुआ, धर्म से विमुख करता हुआ, कशादि से ताड़ित और सधनों को निर्धन करता हुआ प्रजा पर अधिकार जमा रहा था । तदनन्तर वह राजप्रतिनिधि एकादि विजयवर्द्धमान खेट के राजा-मांडलिक, ईश्वर, तलवर ऐसे नागरिक लोग, माडंबिक, कौटुम्बिक, श्रेष्ठी, सार्थनायक तथा अन्य अनेक ग्रामीण पुरुषों के कार्यों में, कारणों में, गुप्त मंत्रणाओं में, निश्चयों और विवादास्पद निर्णयों में सूनता हुआ भी कहता था कि ''मैंने नहीं सूना'' और नहीं सूनता हुआ

कहता था कि ''मैंने सूना है ।'' इसी प्रकार देखता हुआ, बोलता हुआ, ग्रहण करता हुआ और जानता हुआ भी वह कहता था कि मैंने देखा नहीं, बोला नहीं, ग्रहण किया नहीं और जाना नहीं । इसी प्रकार के वंचना-प्रधान कर्म करने वाला मायाचारों को ही प्रधान कर्तव्य मानने वाला, प्रजा को पीड़ित करने रूप विज्ञान वाला और मनमानी करने को ही सदाचरण मानने वाला, यह प्रान्ताधिपति दुःख के कारणीभूत परम कलुषित पापकर्मों को उपार्जित करता हुआ जीवन-यापन कर रहा था । उसके बाद किसी समय उसके शरीर में एक साथ ही सोलह प्रकार के रोगांतक उत्पन्न हो गए । जैसे कि– श्वास, कास, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगन्दर, अर्श, बवासीर, अजीर्ण, दृष्टिशूल, मस्तक-शूल, अरोचक, अक्षिवेदना, कर्णवेदना, खुजली, जलोदर और कुष्टरोग ।

सूत्र - ९

तदनन्तर उक्त सोलह प्रकार के भयंकर रोगों से खेद को प्राप्त वह एकादि नामक प्रान्ताधिपति सेवकों को बुलाकर कहता है–''देवानुप्रियो ! तुम जाओ और विजयवर्द्धमान खेट के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, महापथ और साधारण मार्ग पर जाकर अत्यन्त ऊंचे स्वरों से इस तरह घोषणा करो–'हे देवानुप्रियो ! एकादि प्रान्तपति के शरीर में श्वास, कास, यावत् कोढ़ नामक १६ भयङ्कर रोगांतक उत्पन्न हुए हैं । यदि कोई वैद्य या वैद्यपुत्र, ज्ञायक या ज्ञायक-पुत्र, चिकित्सक या चिकित्सक-पुत्र उन सोलह रोगांतकों में से किसी एक भी रोगांतक को उपशान्त करे तो एकादि राष्ट्रकूट उसको बहुत सा धन प्रदान करेगा ।' इस प्रकार दो तीन बार उद्घोषणा करके मेरी इस आज्ञा के यथार्थ पालन की मुझे सूचना दो ।' उन कौटुम्बिक पुरुषों-सेवकों ने आदेशानुसार कार्य सम्पन्न करके उसे सूचना दी ।

तदनन्तर उस विजयवर्द्धमान खेट में इस प्रकार की उद्घोषणा को सूनकर तथा अवधारण करके अनेक वैद्य, वैद्यपुत्र, ज्ञायक, ज्ञायकपुत्र, चिकित्सक, चिकित्सकपुत्र अपने अपने शस्त्रकोष को हाथ में लेकर अपने अपने घरों से नीकलकर एकादि प्रान्ताधिपति के घर आते हैं । एकादि राष्ट्रकूट के शरीर का संस्पर्श करते हैं, निदान की पृच्छा करते हैं और एकादि राष्ट्रकूट के इन सोलह रोगांतकों में से किसी एक रोगांतक को शान्त करने के लिए अनेक प्रकार के अभ्यंगन, उद्वर्तन, स्नेहपान, वमन, विरेचन, स्वेदन, अवदहन, अवस्नान, अनुवासन, निरूह, बस्तिकर्म, शिरोवेध, तक्षण, प्रतक्षण, शिरोबस्ति, तर्पण, पुटपाक, छल्ली, मूलकन्द, शिलिका, गुटिका, औषध और भेषज्य आदि के प्रयोग से प्रयत्न करते हैं परन्तु उपर्युक्त अनेक प्रकार के प्रयोगात्मक उपचारों से इन सोलह रोगों में से किसी एक रोग को भी उपशान्त करने में समर्थ न हो सके ! जब उन वैद्यों व वैद्यपुत्रादि से उन १६ रोगान्तकों में से एक भी रोग का उपशमन न हो सका तब वे वैद्य व वैद्यपुत्रादि श्रान्त तान्त, तथा परितान्त से खेदित होकर जिधर से आए थे उधर ही चल दिए ।

इस प्रकार वैद्यों के द्वारा प्रत्याख्यात होकर सेवकों द्वारा परित्यक्त होकर औषध और भैषज्य से निर्विण्ण विरक्त, सोलह रोगांतकों से परेशान, राज्य, राष्ट्र, यावत् अन्तःपुर-रणवास में मूर्च्छित–आसक्त एवं राज्य व राष्ट्र का आस्वादन, प्रार्थना, स्पृहा और अभिलाषा करता हुआ एकादि प्रान्तपति व्यथित, दुखार्त्त और वशार्त्त होने से परतंत्र जीवन व्यतीत करके २५० वर्ष की सम्पूर्ण आयु को भोगकर यथासमय काल करके इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारकरूप से उत्पन्न हुआ । तदनन्तर वह एकादि का जीव भवस्थिति संपूर्ण होने पर नरक से नीकलते ही इस मृगाग्राम नगर में विजय क्षत्रिय की मृगादेवी नाम की रानी की कुक्षि में पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ । मृगादेवी के उदर में उत्पन्न होने पर मृगादेवी के शरीर में उज्ज्वल यावत् ज्वलन्त व जाज्वल्यमान वेदना उत्पन्न हुई । जिस दिन से मृगापुत्र बालक मृगादेवी के उदर में गर्भरूप से उत्पन्न हुआ, तबसे लेकर वह मृगादेवी विजय नामक क्षत्रिय को अनिष्ट, अमनोहर, अप्रिय, अमनोज्ञ-असुन्दर और अप्रिय हो गई ।

तदनन्तर किसी काल में मध्यरात्रि के समय कुटुम्बचिन्ता से जागती हुई उस मृगादेवी के हृदय में यह अध्य-वसाय उत्पन्न हुआ कि मैं पहले तो विजय क्षत्रिय को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और अत्यन्त मनगमती, ध्येय, चिन्तनीय, विश्वसनीय, व सम्माननीय थी परन्तु जबसे मेरी कुक्षि में यह गर्भस्थ जीव गर्भ के रूप में उत्पन्न हुआ तबसे विजय क्षत्रिय को मैं अप्रिय यावत् मन से अग्राह्य हो गई हूँ । इस समय विजय क्षत्रिय मेरे नाम तथा गोत्र को

ग्रहण करना–अरे स्मरण करना भी नहीं चाहते ! तो फिर दर्शन व परिभोग–भोगविलास की तो बात ही क्या है ? अतः मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि मैं इस गर्भ को अनेक प्रकार की शातना, पातना, गालना, व मारणा से नष्ट कर दूँ । इस प्रकार विचार करके गर्भपात के लिए गर्भ को गिर देने वाली क्षारयुक्त, कड़वी, कसैली, औषधियों का भक्षण तथा पान करती हुई उस गर्भ के शातन, पातन, गालन व मारण करने की ईच्छा करती है । परन्तु वह गर्भ उपर्युक्त सभी उपायों से भी नाश को प्राप्त नहीं हुआ । तब वह मृगादेवी शरीर से श्रान्त, मन से दुःखित तथा शरीर और मन से खिन्न होती हुई ईच्छा न रहते हुए भी विवशता के कारण अत्यन्त दुःख के साथ गर्भ वहन करने लगी ।

गर्भगत उस बालक की आठ नाड़ियाँ अन्दर की ओर और आठ नाड़ियाँ बाहर की ओर बह रही थी । उनमें प्रथम आठ नाड़ियों से रुधिर बह रहा था । इन सोलह नाड़ियों में से दो नाड़ियाँ कर्ण-विवरों में, दो-दो नाड़ियाँ नेत्र-विवरों में, दो-दो नासिकाविवरों में तथा दो-दो धमनियों में बार-बार पीव व लोहू बहा रही थी । गर्भ में ही उस बालक को भस्मक नामक व्याधि उत्पन्न हो गयी थी, जिसके कारण वह बालक जो कुछ खाता, वह शीघ्र ही भस्म हो जाता था, तब वह तत्काल पीव व शोणित के रूप में परिणत हो जाता था । तदनन्तर वह बालक उस पीव व शोणित को भी खा जाता था । तत्पश्चात् नौ मास परिपूर्ण होने के अनन्तर मृगादेवी ने एक बालक को जन्म दिया जो जन्म से अन्धा और अवयवों की आकृति मात्र रखने वाला था । तदनन्तर विकृत, बेहूदे अंगोपांग वाले तथा अन्धरूप उस बालक को मृगादेवी ने देखा और देखकर भय, त्रास, उद्विग्नता और व्याकुलता को प्राप्त हुई ।

उसने तत्काल धायमाता को बुलाकर कहा–तुम जाओ और इस बालक को ले जाकर एकान्त में किसी कूड़े-कचरे के ढ़ेर पर फेंक आओ । उस धायमाता ने मृगादेवी के इस कथन को 'बहुत अच्छा' कहकर स्वीकार किया और वह जहाँ विजय नरेश थे वहाँ पर आई और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगी–'हे स्वामिन ! पूरे नव मास हो जाने पर मृगादेवी ने एक जन्मान्ध यावत् अवयवों की आकृति मात्र रखने वाले बालक को जन्म दिया है । उस हुण्ड बेहूदे अवयववाले, विकृतांग, व जन्मान्ध बालक को देखकर मृगादेवी भयभीत हुई और मुझे बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा– तुम जाओ और इस बालक को ले जाकर एकान्त में किसी कूड़े-कचरे के ढ़ेर पर फेंक आओ । अतः हे स्वामिन ! आप ही मुझे बतलाएं कि मैं उसे एकान्त में ले जाकर फेंक आऊं या नहीं ?

उसके बाद वह विजय नरेश उस धायमाता के पास से यह सारा वृत्तान्त सूनकर सम्भ्रान्त होकर जैसे ही बैठे थे उठकर खड़े हो गए । जहाँ रानी मृगादेवी थी, वहाँ आए और मृगादेवी से कहने लगे–'हे देवानुप्रिये ! तुम्हारा यह प्रथम गर्भ है, यदि तुम इसको कूड़े-कचरे के ढेर पर फिकवा दोगी तो तुम्हारी भावी प्रजा-सन्तान स्थिर न रहेगी। अतः तुम इस बालक को गुप्त भूमिगृह में रखकर गुप्त रूप से भक्तपानादि के द्वारा इसका पालन-पोषण करो । ऐसा करने से तुम्हारी भावी सन्तति स्थिर रहेगी । तदनन्तर वह मृगादेवी विजय क्षत्रिय के इस कथन को स्वीकृतिसूचक 'तथेति' ऐसा कहकर विनम्र भाव से स्वीकार करती है और उस बालक को गुप्त भूमिगृह में स्थापित कर गुप्तरूप से आहारपानादि के द्वारा पालन-पोषण करती हुई समय व्यतीत करने लगी । भगवान महावीर स्वामी फरमाते हैं–हे गौतम ! यह मृगापुत्र दारक अपने पूर्वजन्मोपार्जित कर्मों का प्रत्यक्ष रूप से फलानुभव करता हुआ इस तरह समय-यापन कर रहा है ।

सूत्र - १०

हे भगवन् ! यह मृगापुत्र नामक दारक यहाँ से मरणावसर पर मृत्यु को पाकर कहाँ जाएगा ? और कहाँ पर उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! मृगापुत्र दारक २६ वर्ष के परिपूर्ण आयुष्य को भोगकर मृत्यु का समय आने पर काल करके इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष में वैताढ्य पर्वत की तलहटी में सिंहकुल में सिंह के रूप में उत्पन्न होगा । वह सिंह महाअधर्मी तथा पापकर्म में साहसी बनकर अधिक से अधिक पापरूप कर्म एकत्रित करेगा। वह सिंह मृत्यु को प्राप्त होकर इस रत्नप्रभापृथ्वी में, जिसकी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरोपम की है; –उन नारकियों में उत्पन्न होगा । बिना व्यवधान के पहली नरक से नीकलकर सीधा सरीसृपों की योनियों में उत्पन्न होगा। वहाँ से काल करके दूसरे नरक में, जिसकी उत्कृष्ट स्थिति तीन सागरोपम की है, उत्पन्न होगा । वहाँ से नीकलकर

सीधा पक्षी-योनि में उत्पन्न होगा । वहाँ से सात सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले तीसरे नरक में उत्पन्न होगा । वहाँ से सिंह की योनि में उत्पन्न होगा । वहाँ वह बड़ा अधर्मी, दूर-दूर तक प्रसिद्ध शूर एवं गहरा प्रहार करने वाला होगा। वहाँ से चौथी नरकभूमि में जन्म लेगा । चौथे नरक से नीकलकर सर्प बनेगा । वहाँ से पाँचवे नरक में उत्पन्न होगा । वहाँ से स्त्रीरूप में उत्पन्न होगा । स्त्री पर्याय से काल करके छट्ठे नरक में उत्पन्न होगा । वहाँ से पुरुष होगा । वहाँ से सबसे निकृष्ट सातवीं नरक में उत्पन्न होगा । वहाँ से जो ये पञ्चेन्द्रिय तिर्यंचों में मच्छ, कच्छप, ग्राह, मगर, सुंसुमार आदि जलचर पञ्चेन्द्रिय जाति में योनियाँ, एवं कुलकोटियों में, जिनकी संख्या साढ़े बारह लाख है, उनके एक एक योनि-भेद में लाखों बार उत्पन्न होकर पुनः पुनः उत्पन्न होकर मरता रहेगा । तत्पश्चात् चतुष्पदों में उरपरिसर्प, भुज-परिसर्प, खेचर, एवं चार इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और दो इन्द्रिय वाले प्राणियों में तथा वनस्पति कायान्तर्गत कटु वृक्षों में, कटु दुग्धवाली अर्कादि वनस्पतियों में, वायुकाय, तेजस्काय, अप्काय व पृथ्वीकाय में लाखों-लाखों बार जन्म मरण करेगा ।

तदनन्तर वहाँ से नीकलकर सुप्रतिष्ठपुर नामक नगर में वृषभ के पर्याय में उत्पन्न होगा । जब वह बाल्या-वस्था को त्याग करके युवावस्था में प्रवेश करेगा तब किसी समय, वर्षाऋतु के आरम्भ-काल में गंगा नामक महानदी के किनारे पर स्थित मिट्टी को खोदता हुआ नदी के किनारे पर गिर जाने से पीड़ित होता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा । मृत्यु के अनन्तर उसी सुप्रतिष्ठपुर नामक नगर में किसी श्रेष्ठि के घर में पुत्ररूप से उत्पन्न होगा । वहाँ पर वह बालभाव को परित्याग कर युवावस्था को प्राप्त होने पर तथारूप-साधुजनोचित गुणों को धारण करने वाले स्थविर-वृद्ध जैन साधुओं के पास धर्म को सूनकर, मनन कर तदनन्तर मुण्डित होकर अगारवृत्ति का परित्याग कर अनगारधर्म को प्राप्त करेगा । अनगारधर्म में ईयासमिति युक्त यावत् ब्रह्मचारी होगा । वह बहुत वर्षों तक यथाविधि श्रामण्य-पर्याय का पालन करके आलोचना व प्रतिक्रमण से आत्मशुद्धि करता हुआ समाधि को प्राप्त कर समय आने पर कालमास में काल प्राप्त करके सौधर्म नाम के प्रथम देव-लोक में देवरूप में उत्पन्न होगा । तदनन्तर देवभव की स्थिति पूरी हो जाने पर वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में जो आढ्य कुल हैं;–उनमें उत्पन्न होगा । वहाँ उसका कलाभ्यास, प्रव्रज्याग्रहण यावत् मोक्षगमन रूप वक्तव्यता दृढ़प्रतिज्ञ की भाँति ही समझ लेनी चाहिए । हे जम्बू ! इस प्रकार से निश्चय ही श्रमण भगवान महावीर ने, जो कि मोक्ष को प्राप्त हो चूके हैं; दुःख-विपाक के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है । जिस प्रकार मैंने प्रभु से साक्षात् सूना है; उसी प्रकार हे जम्बू ! मैं तुमसे कहता हूँ ।

अध्ययन-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-२ – उज्झितक

सूत्र - ११

हे भगवन् ! यदि मोक्ष-संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने दुःखविपाक के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है तो – विपाकसूत्र के द्वितीय अध्ययन का क्या अर्थ बताया है ? इसके उत्तर में श्रीसुधर्मा अनगार ने श्रीजम्बू अनगार को इस प्रकार कहा–हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में वाणिजग्राम नामक नगर था जो ऋद्धिस्तिमित-समृद्ध था । उस वाणिजग्राम के ईशानकोण में दूतिपलाश नामक उद्यान था । उस दूतिपलाश संज्ञक उद्यान में सुधर्मा नाम के यक्ष का यक्षायतन था । उस वाणिजग्राम नामक नगर में मित्र नामक राजा था । उस मित्र राजा की श्री नाम की पटरानी थी ।

उस वाणिजग्राम नगर में सम्पूर्ण पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण शरीर वाली, यावत् परम सुन्दरी, ७२ कलाओं में कुशल, गणिका के ६४ गुणों से युक्त, २६ प्रकार के विशेषों-विषयगुणों में रमण करने वाली, २१ प्रकार के रतिगुणों में प्रधान, कामशास्त्र प्रसिद्ध पुरुष के ३२ उपचारों में कुशल, सुप्त नव अंगों से जागृत, अठारह देशों की अठारह प्रकार की भाषाओं में प्रवीण, शृंगारप्रधान वेषयुक्त गीत, रति, गान्धर्व, नाट्य में कुशल मन को आकर्षित करने वाली, उत्तम गति-गमन से युक्त जिसके विलास भवन पर ऊंची ध्वजा फहरा रही थी, जिसको राजा की ओर से पारितोषिक रूप में छत्र, चामर-चँवर, बाल व्यजनिका कृपापूर्वक प्रदान किये गए थे और कर्णीरथ नामक रथविशेष से गमनागमन करने वाली थी; ऐसी काम-ध्वजा नाम की गणिका-वेश्या रहती थी जो हजारों गणिकाओं का स्वामित्व, नेतृत्व करती हुई समय व्यतीत कर रही थी ।

सूत्र - १२

उस वाणिजग्राम नगर में विजयमित्र नामक एक धनी सार्थवाह निवास करता था । उस विजयमित्र की अन्यून पञ्चेन्द्रिय शरीर से सम्पन्न सुभद्रा नाम की भार्या थी । उस विजयमित्र का पुत्र और सुभद्रा का आत्मज उज्झितक नामक सर्वाङ्गसम्पन्न और रूपवान् बालक था । उस काल तथा उस समय में श्रमण भगवान महावीर वाणिजग्राम नामक नगर में पधारे । प्रजा दर्शनार्थ नीकली । राजा भी कूणिक नरेश की तरह गया । भगवान ने धर्म का उपदेश दिया । जनता तथा राजा दोनों वापिस चले गए ।

उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी के ज्येष्ठ अन्तेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार, जो कि तेजोलेश्या को संक्षिप्त करके अपने अन्दर धारण किये हुए हैं तथा बेले की तपस्या करते हुए थे । वे भिक्षार्थ वाणिज्यग्राम नगर में पधारे । वहाँ (राजमार्ग में) उन्होंने अनेक हाथियों को देखा । वे हाथी युद्ध के लिए उद्यत थे, जिन्हें कवच पहनाए हुए थे, जो शरीररक्षक उपकरण आदि धारण किये हुए थे, जिनके उदर दृढ़ बन्धन से बाँधे हुए थे । जिनके झूलों के दोनों तरफ बड़े बड़े घण्टे लटक रहे थे । जो नाना प्रकार के मणियों ओर रत्नों से जुड़े हुए विविध प्रकार के ग्रैवेयक पहने हुए थे तथा जो उत्तर कंचुक नामक तनुत्राणविशेष एवं अन्य कवच आदि सामग्री धारण किए हुए थे । जो ध्वजा पताका तथा पंचविध शिरोभूषण से विभूषित थे एवं जिन पर आयुध व प्रहरणादि लिए हुए महावत बैठे हुए थे अथवा उन हाथियों पर आयुध लदे हुए थे ।

इसी तरह वहाँ अनेक अश्वों को भी देखा, जो युद्ध के लिए उद्यत थे तथा जिन्हें कवच तथा शारीरिक रक्षा के उपकरण पहनाए हुए थे । जिनके शरीर पर सोने की बनी हुई झूल पड़ी हुई थी तथा जो लटकाए हुए तनुत्राण से युक्त थे । जो बखतर विशेष से युक्त तथा लगाम से अन्वित मुख वाले थे । जो क्रोध से अधरों को चबा रहे थे । चामर तथा स्थासक से जिनका कटिभाग परिमंडित हो रहा था तथा जिन पर सवारी कर रहे अश्वारोही आयुध और प्रहरण ग्रहण किये हुए थे अथवा जिन पर शस्त्रास्त्र लदे हुए थे । इसी तरह वहाँ बहुत से पुरुषों को भी देखा जो दृढ़ बन्धनों से बंधे हुए लोहमय कुसूलादि से युक्त कवच शरीर पर धारण किये हुए, जिन्होंने पट्टिका कसकर बाँध रखी थी । जो गले में ग्रैवेयक धारण किये हुए थे । जिनके शरीर पर उत्तम चिह्नपट्टिका लगी हुई थी तथा जो आयुधों और प्रहरणों को ग्रहण किये हुए थे ।

उन पुरुषों के मध्य में भगवान गौतम ने एक और पुरुष को देखा जिसके हाथों को मोड़कर पृष्ठभाग के साथ रस्सी से बाँधा हुआ था । जिसके नाक और कान कटे हुए थे । जिसका शरीर स्निग्ध किया गया था । जिसके कर और कटि-प्रदेश में वध्य पुरुषोचित्त वस्त्र-युग्म धारण किया हुआ था । हाथ जिसके हथकड़ियों पर रखे हुए थे जिसके कण्ठ में धागे के समान लाल पुष्पों की माला थी, जो गेरु के चूर्ण से पोता गया था, जो भय से संत्रस्त, तथा प्राणों को धारण किये रखने का आकांक्षी था, जिसको तिल-तिल करके काटा जा रहा था, जिसको शरीर के छोटे-छोटे माँस के टुकड़े खिलाए जा रहे थे । ऐसा वह पापात्मा सैकड़ों पत्थरों या चाबुकों से मारा जा रहा था । जो अनेक स्त्री-पुरुष-समुदाय से घिरा हुआ और प्रत्येक चौराहे आदि पर उद्घोषित किया जा रहा था । हे महानुभावो! इस उज्झितक बालक का किसी राजा अथवा राजपुत्र ने कोई अपराध नहीं किया, किन्तु यह इसके अपने ही कर्मों का अपराध है, जो इस दुःस्थिति को प्राप्त है ।

सूत्र - १३

तत्पश्चात् उस पुरुष को देखकर भगवान् गौतम को यह चिन्तन, विचार, मनःसंकल्प उत्पन्न हुआ कि– 'अहो! यह पुरुष कैसी नरकतुल्य वेदना का अनुभव कर रहा है !' ऐसा विचार करके वाणिजग्राम नगर में उच्च, नीच, मध्यम घरों में भ्रमण करते हुए यथापर्याप्त भिक्षा लेकर वाणिजग्राम नगर के मध्य में से होते हुए श्रमण भगवान महावीर के पास आए । भिक्षा दिखलाई भगवान को वन्दना-नमस्कार करके उनसे इस प्रकार कहने लगे– हे प्रभो ! आपकी आज्ञा से मैं भिक्षा के हेतु वाणिजग्राम नगर में गया । वहाँ मैंने एक ऐसे पुरुष को देखा जो साक्षात् नारकीय वेदना का अनुभव कर रहा है । हे भगवन् ! वह पुरुष पूर्वभव में कौन था ? जो यावत् नरक जैसी विषम वेदना भोग रहा है ?

हे गौतम ! उस काल तथा उस समय में इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नामक एक समृद्ध नगर था । उस नगर का सुनन्द नामक राजा था । वह हिमालय पर्वत के समान महान् था । उस हस्तिनापुर नामक नगर के लगभग मध्यभाग में सैकड़ों स्तम्भों से निर्मित सुन्दर, मनोहर, मन को प्रसन्न करने वाली एक विशाल गोशाला थी । वहाँ पर नगर के अनेक सनाथ और अनाथ, ऐसी नगर की गायें, बैल, नागरिक छोटी गायें, भैंसे, नगर के साँड, जिन्हें प्रचुर मात्रा में घास-पानी मिलता था, भय तथा उपसर्गादि से रहित होकर परम सुख-पूर्वक निवास करते थे । उस हस्तिनापुर नगर में भीम नामक एक कूटग्राह रहता था । वह स्वभाव से ही अधर्मी व कठिनाई से प्रसन्न होने वाला था । उस भीम कूटग्राह की उत्पला नामक भार्या थी जो अहीन पंचेन्द्रिय वाली थी । किसी समय वह उत्पला गर्भवती हुई । उस उत्पला नाम की कूटग्राह की पत्नी को पूरे तीन मास के पश्चात् इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ–

वे माताएं धन्य हैं, पुण्यवती हैं, कृतार्थ हैं, सुलक्षणा हैं, उनका ऐश्वर्य सफल है, उनका मनुष्यजन्म-जीवन भी सार्थक है, जो अनेक अनाथ या सनाथ नागरिक पशुओं यावत् वृषभों के ऊधस्, स्तन, वृषण, पूँछ, ककुद्, स्कन्ध, कर्ण, नेत्र, नासिका, जीभ, ओष्ठ, कम्बल, जो कि शूल्य, तलित, भृष्ट, शुष्क और लवणसंस्कृत माँस के साथ सुरा, मधु मेरक, सीधु, प्रसन्ना, इन सब मद्यों का सामान्य व विशेष रूप से आस्वादन, विस्वादन, परिभाजन तथा परिभोग करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं । काश ! मैं भी अपने दोहद को इसी प्रकार पूर्ण करूँ । इस विचार के अनन्तर उस दोहद के पूर्ण न होने से वह उत्पला नामक कूटग्राह की पत्नी सूखने लगी, भूखे व्यक्त के समान दीखने लगी, माँस रहित-अस्थि-शेष हो गयी, रोगिणी व रोगी के समान शिथिल शरीर वाली, निस्तेज, दीन तथा चिन्तातुर मुख वाली हो गयी । उसका बदन फीका तथा पीला पड़ गया, नेत्र तथा मुख-कमल मुर्झा गया, यथोचित पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माल्य-फूलों की गूँथी हुई माला-आभूषण और हार आदि का उपभोग न करनेवाली, करतल से मर्दित कमल को माला की तरह म्लान हुई कर्तव्य व अकर्तव्य के विवेकरहित चिन्ता-ग्रस्त रहने लगी ।

इतने में भीम नामक कूटग्राह, जहाँ पर उत्पला नाम की कूटग्राहिणी थी, वहाँ आया और उसने आर्तध्यान ध्याती हुई चिन्ताग्रस्त उत्पला को देखकर कहने लगा–'देवानुप्रिये ! तुम क्यों इस तरह शोकाकुल, हथेली पर मुख

रखकर आर्तध्यान में मग्न हो रही हो ? स्वामिन् ! लगभग तीन मास पूर्ण होने पर मुझे यह दोहद उत्पन्न हुआ कि वे माताएं धन्य हैं, कि जो चतुष्पाद पशुओं के ऊधस्, स्तन आदि के लवण-संस्कृत माँस का अनेक प्रकार की मदिराओं के साथ आस्वादन करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है । उस दोहद के पूर्ण न होने से निस्तेज व हतोत्साह होकर मैं आर्तध्यान में मग्न हूँ । तदनन्तर भीम कूटग्राह ने उत्पला से कहा–देवानुप्रिये ! तुम चिन्ताग्रस्त व आर्तध्यान युक्त न होओ, मैं वह सब कुछ करूँगा जिससे तुम्हारे इस दोहद की परिपूर्ति हो जाएगी । इस प्रकार के इष्ट, प्रिय, कान्त, मनोहर, मनोज्ञ वचनों से उसने उसे समाश्वासन दिया । तत्पश्चात् भीम कूटग्राह आधी रात्रि के समय अकेला ही दृढ़ कवच पहनकर, धनुष-बाण से सज्जि होकर, ग्रैवेयक धारण कर एवं आयुध प्रहरणों को लेकर अपने घर से नीकला और हस्तिनापुर नगर के मध्य से होता हुआ जहाँ पर गोमण्डप था वहाँ आकर वह नागरिक पशुओं यावत् वृषभों में से कईं एक के ऊधस्, कईं एक के सास्ना-कम्बल आदि व कईं एक के अन्यान्य अङ्गोंपाङ्गों को काटता है और काटकर अपने घर आता है । आकर अपनी भार्या उत्पला को दे देता है । तदनन्तर वह उत्पला उन अनेक प्रकार के शूल आदि पर पकाये गए गोमांसों के साथ अनेक प्रकार की मदिरा आदि का आस्वादन, विस्वादन करती हुई अपने दोहद परिपूर्ण करती है । इस तरह वह परिपूर्ण दोहदवाली, सन्मानित दोहद वाली, विनीत दोहदवाली, व्युच्छिन्न दोहदवाली व सम्पन्न दोहदवाली होकर गर्भ को सुखपूर्वक धारण करती है ।

सूत्र - १४

तदनन्तर उस उत्पला नामक कूटग्राहिणी ने किसी समय नव-मास परिपूर्ण हो जाने पर पुत्र को जन्म दिया। जन्म के साथ ही उस बालक ने अत्यन्त कर्णकटु तथा चीत्कारपूर्ण भयंकर आवाज की । उस बालक के कठोर, चीत्कारपूर्ण शब्दों को सूनकर तथा अवधारण कर हस्तिनापुर नगर के बहुत से नागरिक पशु यावत् वृषभ आदि भयभीत व उद्वेग को प्राप्त होकर चारों दिशाओं में भागने लगे । इससे उसके माता-पिता ने इस तरह उसका नाम-संस्करण किया कि जन्म के साथ ही उस बालक ने चीत्कार के द्वारा कर्णकटु स्वर युक्त आक्रन्दन किया, इस प्रकार के उस कर्णकटु, चीत्कारपूर्ण आक्रन्दन को सूनकर तथा अवधारण कर हस्तिनापुर के गौ आदि नागरिक पशु भयभीत व उद्विग्न होकर चारों तरफ भागने लगे, अतः इस बालक का नाम गोत्रास रखा जाता है । तदनन्तर यथासमय उस गोत्रास नामक बालक ने बाल्यावस्था को त्याग कर युवावस्था में प्रवेश किया ।

तत्पश्चात् भीम कूटग्राह किसी समय कालधर्म को प्राप्त हुआ । तब गोत्रास बालक ने अपने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों से परिवृत्त होकर रुदन, विलपन तथा आक्रन्दन करते हुए अपने पिता भीम कूटग्राह का दाहसंस्कार किया । अनेक लौकिक मृतक-क्रियाएं की । तदनन्तर सुनन्द नामक राजा ने किसी समय स्वयमेव गोत्रास बालक को कूटग्राह के पद पर नियुक्त किया । गोत्रास भी महान् अधर्मी व दुष्प्रत्यानन्द था । उसके बाद वह गोत्रास कूटग्राह प्रतिदिन आधी रात्रि के समय सैनिक की तरह तैयार होकर कवच पहनकर और शास्त्रास्त्रों को धारण कर अपने घर से नीकलता । गोमण्डप में जाता । अनेक गौ आदि नागरिक पशुओं के अङ्गोंपाङ्गों को काटकर आ जाता । उन गौ आदि पशुओं के शूलपक्व तले, भुने, सूखे और नमकीन माँसों के साथ मदिरा आदि का आस्वादन, विस्वादन करता हुआ जीवनयापन करता । तदनन्तर वह गोत्रास कूटग्राह इस प्रकार के कर्मोंवाला, इस प्रकार के कार्यों में प्रधानता रखने वाला, इस प्रकार की पाप-विद्या को जानने वाला तथा ऐसे क्रूर आचरणों वाला नाना प्रकार के पापकर्मों का उपार्जन कर पाँच सौ वर्ष का पूरा आयुष्य भोगकर चिन्ता और दुःख से पीड़ित होकर मरणावसर में काल करके उत्कृष्ट तीन सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाले दूसरे नरक में नारक रूप से उत्पन्न हुआ ।

सूत्र - १५

विजयमित्र की सुभद्रा नाम की भार्या जातनिन्दुका थी । अत एव जन्म लेते ही उसके बालक विनाश को प्राप्त हो जाते थे । तत्पश्चात् वह गोत्रास कूटग्राह का जीव भी दूसरे नरक से नीकलकर सीधा इसी वाणिजग्राम नगर के विजयमित्र सार्थवाह की सुभद्रा नाम की भार्या के उदर में पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ–नव मास परिपूर्ण होने

पर सुभद्रा सार्थवाही ने पुत्र को जन्म दिया । तत्पश्चात् सुभद्रा सार्थवाही उस बालक को जन्मते ही एकान्त में कूड़े-कर्कट के ढ़ेर पर डलवा देती है, और पुनः उठवा लेती है । तत्पश्चात् क्रमशः संरक्षण व संगोपन करती हुई उसका परिवर्द्धन करने लगती है । उसके बाद उस बालक के माता-पिता स्थितिपतित के अनुसार पुत्रजन्मोचित बधाई बाँटने आदि की क्रिया करते हैं । चन्द्र-सूर्य-दर्शन-उत्सव व जागरण महोत्सव भी महान् ऋद्धि एवं सत्कार के साथ करते हैं । तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता ग्यारहवे दिन के व्यतीत हो जाने पर तथा बारहवाँ दिन आ जाने पर इस प्रकार का गुण से सम्बन्धित व गुणनिष्पन्न नामकरण करते हैं–क्योंकि हमारा यह बालक एकान्त में उकरड़े पर फेंक दिया गया था, अतः हमारा यह बालक 'उज्झितक' नाम से प्रसिद्ध हो । तदनन्तर वह उज्झितक कुमार पाँच धायमाताओं की देखरेख में रहने लगा । उन धायमाताओं के नाम ये हैं–क्षीरधात्री, स्नानधात्री, मण्डनधात्री, क्रीडापनधात्री, गोद में उठाकर खिलाने वाली । इन धायमाताओं के द्वारा दृढ़प्रतिज्ञ की तरह निर्वात एवं निर्व्याघात पर्वतीय कन्दरा में अवस्थित चम्पक वृक्ष की तरह सुखपूर्वक वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।

इसके बाद विजयमित्र सार्थवाह ने जहाज द्वारा गणिम, धरिम, मेय और पारिच्छेद्य रूप चार प्रकार की बेचने योग्य वस्तुएं लेकर लवणसमुद्र में प्रस्थान किया । परन्तु लवण-समुद्र में जहाज के विनष्ट हो जाने से विजय-मित्र की उपर्युक्त चारों प्रकार की महामूल्य वस्तुएं जलमग्न हो गयीं और वह स्वयं त्राण रहित और अशरण होकर कालधर्म को प्राप्त हो गया । तदनन्तर ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी तथा सार्थवाहों ने जब लवणसमुद्र में जहाज के नष्ट और महामूल्य वाले क्रयाणक के जलमग्न हो जाने पर त्राण और शरण से रहित विजयमित्र की मृत्यु का वृत्तान्त सूना तो वे हस्तनिक्षेप-धरोहर व बाह्य भाण्डसार को लेकर एकान्त स्थान में चले गये । तदनन्तर सुभद्रा सार्थवाही ने जिस समय लवणसमुद्र में जहाज के नष्ट हो जाने के कारण भाण्डसार के जलमग्न हो जाने के साथ विजयमित्र सार्थवाह की मृत्यु के वृत्तान्त को सूना, तब यह पतिवियोगजन्य महान् शोक से ग्रस्त हो गई । कुल्हाड़े से कटी हुई चम्पक वृक्ष की शाखा की तरह धड़ाम से पृथ्वीतल पर गिर पड़ी । तत्पश्चात् वह सुभद्रा-सार्थवाही एक मुहूर्त्त के अनन्तर आश्वस्त हो अनेक मित्रों, ज्ञातिजनों, स्वजनों, सम्बन्धियों तथा परिजनों से घिरी हुई रुदन क्रन्दन विलाप करती हुई विजयमित्र के लौकिक मृतक-क्रियाकर्म करती है । तदनन्तर वह सुभद्रा सार्थवाही किसी अन्य समय लवणसमुद्र में पति का गमन, लक्ष्मी का विनाश, पोत-जहाज का जलमग्न होना तथा पति की मृत्यु की चिन्ता में निमग्न रहती हुई काल-धर्म को प्राप्त हो गई ।

सूत्र - १६

तदनन्तर नगररक्षक पुरुषों ने सुभद्रा सार्थवाही की मृत्यु के समाचार जानकर उज्झितक कुमार को अपने घर से नीकाल दिया और उसके घर को किसी दूसरे को सौंप दिया । अपने घर से नीकाला जाने पर वह उज्झितक कुमार वाणिजग्राम नगर के त्रिपथ, चतुष्पथ, चत्वर, राजमार्ग एवं सामान्य मार्गों पर, द्यूतगृहों, वेश्यागृहों व मद्यपान गृहों में सुखपूर्वक भटकने लगा । तदनन्तर बेरोकटोक स्वच्छन्दमति एवं निरंकुश बना हुआ वह चौर्यकर्म, द्यूतकर्म, वेश्यागमन और परस्त्रीगमन में आसक्त हो गया । तत्पश्चात् किसी समय कामध्वजा वेश्या के साथ विपुल, उदार-प्रधान मनुष्य सम्बन्धी विषयभोगों का उपभोग करता हुआ समय व्यतीत करने लगा । तदनन्तर उस विजयमित्र राजा की श्री नामक देवी को योनिशूल उत्पन्न हो गया । इसलिए विजयमित्र राजा अपनी रानी के साथ उदार-प्रधान मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगने में समर्थ न रहा । अतः अन्य किसी समय उस राजा ने उज्झितकुमार को कामध्वजा गणिका के स्थान से नीकलवा दिया और कामध्वजा वेश्या के साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार-प्रधान विषयभोगों का उपभोग करने लगा ।

तदनन्तर कामध्वजा गणिका के घर से निकाले जाने पर कामध्वजा गणिको में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और अध्युपपन्न, वह उज्झितक कुमार अन्यत्र कहीं भी स्मृति, रति, व धृति को प्राप्त न करता हुआ, उसी में चित्त व मन को लगाए हुए, तद्विषयक परिणाम वाला, तद्विषयक अध्यवसाय, उसी सम्बन्धी प्रयत्न-विशेष वाला, उसकी ही प्राप्ति के लिए उद्यत, उसीमें मन, वचन और इन्द्रियों को समर्पित करने वाला, उसी की भावना से भावित होता

हुआ कामध्वजा वेश्या के अनेक अन्तर, छिद्र व विवर की गवेषणा करता हुआ जीवनयापन कर रहा था । तदनन्तर वह उज्झितक कुमार किसी अन्य समय में कामध्वजा गणिका के पास जाने का अवसर प्राप्त कर गुप्तरूप से उसके घर में प्रवेश करके कामध्वजा वेश्या के साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार विषयभोगों का उपभोग करता हुआ जीवनयापन करने लगा ।

इधर किसी समय बलमित्र नरेश, स्नान, बलिकर्म, कौतुक, मंगल प्रायश्चित्त के रूप में मस्तक पर तिलक एवं मांगलिक कार्य करके सर्व अलंकारों से अलंकृत हो, मनुष्यों के समूह से घिरा हुआ कामध्वजा वेश्या के घर गया । वहाँ उसने कामध्वजा वेश्या के साथ मनुष्य सम्बन्धी भोगों का उपभोग करते हुए उज्झितक कुमार को देखा। देखते ही वह क्रोध से लाल-पीला हो गया । मस्तक पर त्रिवलिक भृकुटि चढ़ाकर अपने अनुचरों के द्वारा उज्झितक कुमार को पकड़वाया । यष्टि, मुष्टि, जानु, कर्पूर के प्रहारों से उसके शरीर को चूर-चूर और मथित करके अवकोटक बन्धन से बाँधा और बाँधकर 'इसी प्रकार से यह बध्य है' ऐसी आज्ञा दी । हे गौतम ! इस प्रकार वह उज्झितक कुमार पूर्वकृत् पापमय कर्मों का फल भोग रहा है ।

सूत्र - १७

हे प्रभो ! यह उज्झितक कुमार यहाँ से कालमास में काल करके कहाँ जाएगा ? और कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! उज्झितक कुमार २५ वर्ष की पूर्ण आयु को भोगकर आज ही त्रिभागविशेष दिन में शूली द्वारा भेद को प्राप्त होकर कालमास में काल करके रत्नप्रभा में नारक रूप में उत्पन्न होगा । वहाँ से नीकलकर सीधा इसी जम्बू द्वीप में भारतवर्ष के वैताढ्य पर्वत के पादमूल में वानर के रूप में उत्पन्न होगा । वहाँ पर बालभाव को त्याग कर युवावस्था को प्राप्त होता हुआ वह पशु सम्बन्धी भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, भोगों के स्नेहपाश में जकड़ा हुआ और भोगों ही में मन को लगाए रखने वाला होगा । वह उत्पन्न हुए वानरशिशुओं का अवहनन किया करेगा । ऐसे कुकर्म में तल्लीन हुआ वह काल-मास में काल करके इसी जम्बूद्वीप में इन्द्रपुर नामक नगर में गणिका के घर में पुत्र रूप में उत्पन्न होगा । माता-पिता उत्पन्न होते ही उस बालक को वर्द्धितक बना देंगे और नपुंसक के कार्य सिखलाएंगे । बारह दिन के व्यतीत हो जाने पर उसके माता-पिता उसका 'प्रियसेन' यह नामकरण करेंगे । बाल्यभाव को त्याग कर युवावस्था को प्राप्त तथा विज्ञ, एवं बुद्धि आदि की परिपक्व अवस्था को उपलब्ध करने वाला यह प्रियसेन नपुंसक रूप, यौवन व लावण्य के द्वारा उत्कृष्ट-उत्तम और उत्कृष्ट शरीर वाला होगा । तदनन्तर वह प्रियसेन नपुंसक इन्द्रपुर नगर के राजा, ईश्वर यावत् अन्य मनुष्यों को अनेक प्रकार के प्रयोगों से, मन्त्रों से मन्त्रित चूर्ण, भस्म आदि से, हृदय को शून्य कर देने वाले, अदृश्य कर देने वाले, वश में करने वाले, प्रसन्न कर देने वाले और पराधीन कर देने वाले प्रयोगों से वशीभूत करके मनुष्य सम्बन्धी उदार भोगों को भोगता हुआ समययापन करेगा । इस तरह वह प्रियसेन नपुंसक इन पापपूर्ण कामों में ही बना रहेगा ।

वह बहुत पापकर्मों का उपार्जन करके १२१ वर्ष की परम आयु को भोगकर मृत्यु को प्राप्त होकर इस रत्नप्रभा नरक में नारक के रूप में उत्पन्न होगा । वहाँ से सरीसृप आदि प्राणियों की योनियों में जन्म लेगा । वहाँ से उसका संसार-भ्रमण मृगापुत्र की तरह होगा यावत् पृथिवीकाय आदि में जन्म लेगा । वहाँ से इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष की चम्पा नगरी में भैंसा के रूप में जन्म लेगा । वहाँ गोष्ठिकों के द्वारा मारे जाने पर उसी नगरी के श्रेष्ठि कुल में पुत्ररूप में उत्पन्न होगा । यहाँ पर बाल्यावस्था को पार करके यौवन अवस्था को प्राप्त होता हुआ वह तथारूप स्थविरों के पास शंका कांक्षा आदि दोषों से रहित बोधिलाभ को प्राप्त कर अनगार धर्म को ग्रहण करेगा । वहाँ से कालमास में कालकर सौधर्म नामक प्रथम देवलोक में उत्पन्न होगा । यावत् मृगापुत्र के समान कर्मों का अन्त करेगा ।

अध्ययन-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-३ – अभग्नसेन

सूत्र - १८

तृतीय अध्ययन की प्रस्तावना पूर्ववत् । उस काल उस समय में पुरिमताल नगर था । वह भवनादि की अधिकता से तथा धन-धान्यादि से परिपूर्ण था। उस पुरिमताल नगर के ईशान-कोणमें अमोघदर्शी नामक उद्यान था उसमें अमोघदर्शी नामक यक्ष का एक यक्षायतन था । पुरिमताल नगर में महाबल नामक राजा राज्य करता था ।

उस पुरिमताल नगर के ईशान कोण में सीमान्त पर स्थित अटवी में शालाटवी नाम की चोरपल्ली थी जो पर्वतीय भयंकर गुफाओं के प्रातभाग पर स्थित थी । बाँस की जाली की बनी हुई वाड़रूप प्राकार से घिरी हुई थी । छिन्न पर्वत के ऊंचे-नीचे गर्तरूप खाई वाली थी । उसमें पानी की पर्याप्त सुविधा थी । उसके बाहर दूर-दूर तक पानी अप्राप्य था । उसमें भागने वाले मनुष्यों के मार्गरूप अनेक गुप्तद्वार थे । जानकार व्यक्ति ही उसमें निर्गम कर सकता था । बहुत से मोष-चोरों से चुराई वस्तुओं को वापिस लाने के लिए उद्यत मनुष्यों द्वारा भी उसका पराजय नहीं किया जा सकता था । उस शालाटवी चोरपल्ली में विजय नाम का चोर सेनापति रहता था । वह महा अधर्मी था यावत् उसके हाथ सदा खून से रंगे रहते थे । उसका नाम अनेक नगरों में फैला हुआ था । वह शूरवीर, दृढ़प्रहारी साहसी, शब्दवेधी तथा तलवार और लाठी का अग्रगण्य योद्धा था । वह सेनापति उस चोरपल्ली में पाँच सौ चोरों का स्वामित्व, अग्रेसरत्व, नेतृत्व, बड़प्पन करता हुआ रहता था ।

सूत्र - १९

तदनन्तर वह विजय नामक चोर सेनापति अनेक चोर, पारदारिक, ग्रन्थिभेदक, सन्धिच्छेदक, धूर्त वगैरह लोग तथा अन्य बहुत से छिन्न, भिन्न तथा शिष्टमण्डली से बहिष्कृत व्यक्तियों के लिए बाँस के वन के समान गोपक या संरक्षक था । वह विजय चोर सेनापति पुरिमताल नगर के ईशान कोणगत जनपद को अनेक ग्रामों को नष्ट करने से, अनेक नगरों का नाश करने से, गाय आदि पशुओं के अपहरण से, कैदियों को चुराने से, पथिकों को लूटने से, खात-सेंध लगाकर चोरी करने से, पीड़ित करता हुआ, विध्वस्त करता हुआ, तर्जित, ताडित, स्थान-धन तथा धान्यादि से रहित करता हुआ तथा महाबल राजा के राजदेयकर-महसूल को भी बारंबार स्वयं ग्रहण करता हुआ समय व्यतीत करता था ।

उस विजय नामक चोर सेनापति की स्कन्दश्री नामकी परिपूर्ण पाँच इन्द्रियों से युक्त सर्वांगसुन्दरी पत्नी थी। उस विजय चोर सेनापति का पुत्र एवं स्कन्दश्री का आत्मज अभग्नसेन नाम का एक बालक था, जो अन्यून पाँच इन्द्रियों वाला तथा विशेष ज्ञान रखने वाला और बुद्धि की परिपक्वता से युक्त यौवनावस्था को प्राप्त किये हुए था । उस काल तथा उस समय में पुरिमताल नगर में श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे । परिषद् नीकली । राजा भी गया । भगवान ने धर्मोपदेश दिया । राजा तथा जनता वापिस लौट आये ।

उस काल उस समय में श्रमण भगवान महावीर के प्रधान शिष्य गौतम स्वामी राजमार्ग में पधारे । उन्होंने बहुत से हाथियों, घोड़ों तथा सैनिकों की तरह शस्त्रों से सुसज्जित और कवच पहने हुए अनेक पुरुषों को देखा । उन सब के बीच अवकोटक बन्धन से युक्त उद्घोषित एक पुरुष को भी देखा । राजपुरुष उस पुरुष को चत्वर पर बैठाकर उसके आगे आठ लघुपिताओं को मारते हैं । तथा कशादि प्रहारों से ताड़ित करते हुए दयनीय स्थिति को प्राप्त हुए उस पुरुष को उसके ही शरीर में से काटे गए माँस के छोटे-छोटे टुकड़ों को खिलाते हैं और रुधिर का पान कराते हैं । द्वितीय चत्वर पर उसकी आठ लघुमाताओं को उसके समक्ष ताड़ित करते हैं और माँस खिलाते तथा रुधिरपान कराते हैं । तीसरे चत्वर पर आठ महापिताओं को, चौथे चत्वर पर आठ महामाताओं को, पाँचवें पर पुत्रों को, छट्ठे पर पुत्रवधूओं को, सातवें पर जामाताओं को, आठवें पर लड़कियों को, नवमें पर नप्ताओं को, दसवें पर लड़के और लड़कियों की लड़कियों को, ग्यारहवे पर नप्तृकापतियों को, तेरहवें पर पिता की बहिनों के पतियों को, चौदहवें पर पिता की बहिनों को, पन्द्रहवें पर माता की बहिनों के पतियों को, सोलहवें पर माता की बहिनों को, सत्रहवें पर मामा की स्त्रियों को, अठारहवें पर शेष मित्र, ज्ञाति, स्वजन सम्बन्धी और परिजनों को उस पुरुष के

आगे मारते हैं तथा चाबुक के प्रहारों से ताड़ित करते हुए वे राजपुरुष करुणाजनक उस पुरुष को उसके शरीर से नीकाले हुए माँस के टुकड़े खिलाते और रुधिर का पान कराते हैं ।

सूत्र - २०

तदनन्तर भगवान गौतम के हृदय में उस पुरुष को देखकर यह सङ्कल्प उत्पन्न हुआ यावत् पूर्ववत् वे नगर से बाहर नीकले तथा भगवान के पास आकर निवेदन करने लगे । यावत् भगवन् ! वह पुरुष पूर्वभव में कौन था ? जो इस तरह अपने कर्मों का फल पा रहा है ? इस प्रकार निश्चय ही हे गौतम ! उस काल तथा उस समय इस जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष में पुरिमताल नामक समृद्धिपूर्ण नगर था । वहाँ उदित नाम का राजा राज्य करता था, जो हिमालय पर्वत की तरह महान था । निर्णय नाम का एक अण्डों का व्यापारी भी रहता था । वह धनी तथा पराभव को न प्राप्त होने वाला, अधर्मी यावत् परम असंतोषी था । निर्णयनामक अण्डवणिक के अनेक दत्तभृति-भक्तवेतन अनेक पुरुष प्रतिदिन कुद्दाल व बाँस की पिटारियों को लेकर पुरिमताल नगर के चारों और अनेक, कौवी के, घूकी के, कबूतरी के, बगुली के, मोरनी के, मुर्गी के, तथा अनेक जलचर, स्थलचर, व खेचर आदि जीवों के अण्डों को लेकर पिटारियों में भरते थे और भरकर निर्णय नामक अण्डों के व्यापारी को अण्डों से भरी हुई वे पिटारियाँ देते थे ।

तदनन्तर वह निर्णय नामक अण्डवर्णक के अनेक वेतनभोगी पुरुष बहुत से कौवी यावत् कुकड़ी के अण्डों तथा अन्य जलचर, स्थलचर एवं खेचर आदि पूर्वोक्त जीवों के अण्डों को तवों पर कहाड़ों पर हाथों में एवं अंगारों में तलते थे, भूनते थे, पकाते थे । राजमार्ग की मध्यवर्ती दुकानों पर अण्डों के व्यापार से आजीविका करते हुए समय व्यतीत करते थे । वह निर्णय अण्डवणिक स्वयं भी अनेक कौवी यावत् कुकड़ी के अण्डों के, जो कि पकाये हुए, तले हुए और भुने हुए थे, साथ ही सुरा, मधु, मेरक, जाति तथा सीधु इन पंचविध मदिराओं का आस्वादन करता हुआ जीवन-यापन कर रहा था । तदनन्तर वह निर्णय अण्डवणिक् इस प्रकार के पापकर्मों का करने वाला अत्यधिक पापकर्मों को उपार्जित करके एक हजार वर्ष की परम आयुष्य को भोगकर, मृत्यु के समय में मृत्यु को प्राप्त करके तीसरी नरक में उत्कृष्ट सात सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ ।

सूत्र - २१

वह निर्णय नामक अण्डवणिक् नरक से नीकलकर विजय नामक चोर सेनापति की स्कन्दश्री भार्या के उदर में पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ । किसी अन्य समय लगभग तीन मास परिपूर्ण होने पर स्कन्दश्री को यह दोहद उत्पन्न हुआ–वे माताएं धन्य हैं, जो मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धियों और परिजनों की महिलाओं तथा अन्य महिलाओं से परिवृत्त होकर स्नान यावत् अनिष्टोत्पादक स्वप्नादि को निष्फल बनाने के लिए प्रायश्चित्त रूप में माङ्गलिक कृत्यों को करके सर्व प्रकार के अलंकारों से अलंकृत हो, बहुत प्रकार के अशन, पान, खादिम, स्वादिम पदार्थों तथा सुरा, मधु, मेरक, जाति और प्रसन्नादि मदिराओं का आस्वादन, विस्वादन, परिभाजन और परिभोग करती हुई विचरती हैं, तथा भोजन के पश्चात् जो उचित स्थान पर उपस्थित हुई हैं, जिन्होंने पुरुष का वेश पहना हुआ है और जो दृढ़ बन्धनों से बंधे हुए, लोहमय कसूलक आदि से युक्त कवच-लोहमय बख्तर को शरीर पर धारण किये हुए हैं, यावत् आयुध और प्रहरणों से युक्त हैं, तथा वाम हस्त में धारण किये हुए फलक-ढालों से, कोश-म्यान से बाहर नीकली हुई तलवारों से, कन्धे पर रखे हुए तरकशों से ऊंचे किये हुए जालों अथवा शस्त्रविशेषों से, प्रत्यंचा युक्त धनुषों से, सम्यक्तया फेंके जाने वाले बाणों से, लटकती व अवसारित चालित जंघा-घण्टियों के द्वारा तथा क्षिप्रतूर्य बजाने से महान्, उत्कृष्ट-आनन्दमय महाध्वनि से समुद्र की आवाज के समान आकाशमण्डल को शब्दाय-मान करती हुई शालाटवी नामक चोरपल्ली के चारों ओर अवलोकन तथा चारों तरफ भ्रमण करती हुई अपना दोहद पूर्ण करती हैं । क्या अच्छा हो यदि मैं भी इसी भाँति अपने दोहद को पूर्ण करूँ ? ऐसा विचार करने के पश्चात् वह दोहद के पूर्ण न होने से उदास हुई, दुबली पतली और जमीन पर नजर लगाए आर्तध्यान करने लगी ।

तदनन्तर विजय चोर सेनापति ने आर्तध्यान करती हुई स्कन्दश्री को देखकर इस प्रकार पूछा–देवानुप्रिये !

तुम उदास हुई क्यों आर्तध्यान कर रही हो ? स्कन्दश्री ने विजय चोर सेनापति से कहा–देवानुप्रिय ! मुझे गर्भ धारण किये हुए तीन मास हो चूके हैं । मुझे पूर्वोक्त दोहद हुआ, उसकी पूर्ति न होने से आर्तध्यान कर रही हूँ । तब विजय चोर सेनापति ने अपनी स्कन्दश्री भार्या का यह कथन सून और समझ कर कहा–हे सुभगे ! तुम इस दोहद की अपनी ईच्छा के अनुकूल पूर्ति कर सकती हो, इसकी चित्ता न करो । तदनन्तर वह स्कन्दश्री पति के वचनों को सूनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई । हर्षातिरेक से बहुत सहचारियों व चोरमहिलाओं को साथ में लेकर स्नानादि से निवृत्त हो, अलंकृत होकर विपुल अशन, पान, व सुरा मदिरा आदि का आस्वादन, विस्वादन करने लगी । इस तरह सबके साथ भोजन करने के पश्चात् उचित स्थान पर एकत्रित होकर पुरुषवेश को धारण कर तथा दृढ़ बन्धनों से बंधे हुए लोहमय कसूलक आदि से युक्त कवच को शरीर पर धारण करके यावत् भ्रमण करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती है । दोहद के सम्पूर्ण होने, सम्मानित होने, विनीत होने, तथा सम्पन्न होने पर अपने उस गर्भ को परमसुख-पूर्वक धारण करती हुई रहने लगी ।

तदनन्तर उस चोर सेनापति की पत्नी स्कन्दश्री ने नौ मास के परिपूर्ण होन पर पुत्र को जन्म दिया । विजय चोर सेनापति ने भी दश दिन पर्यन्त महान वैभव के साथ स्थिति-पतित कुलक्रमागत उत्सव मनाया । उसके बाद बालक के जन्म के ग्यारहवे दिन विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तैयार कराया । मित्र, ज्ञाति, स्वजनों आदि को आमन्त्रित किया, जिमाया और उनके सामने इस प्रकार कहा, 'जिस समय यह बालक गर्भ में आया था, उस समय इसकी माता को एक दोहद उत्पन्न हुआ था, अतः माता को जो दोहद उत्पन्न हुआ वह अभग्न रहा तथा निर्विघ्न सम्पन्न हुआ । इसलिए इस बालक का 'अभग्नसेन' यह नामकरण किया जाता है ।' तदनन्तर यह अभग्न-सेन बालक क्षीरधात्री आदि पाँच धायमाताओं के द्वारा सँभाला जाता हुआ वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।

सूत्र - २२

अनुक्रम से कुमार अभग्नसेन ने बाल्यावस्था को पार करके युवावस्था में प्रवेश किया । आठ कन्याओं के साथ उसका विवाह हुआ । विवाह में उसके माता-पिता ने आठ-आठ प्रकार की वस्तुएं प्रीतिदान में दीं और वह ऊंचे प्रासादों में रहकर मनुष्य सम्बन्धी भोगों का उपभोग करने लगा । तत्पश्चात् किसी समय वह विजय चोर सेनापति कालधर्म को प्राप्त हो गया । उसकी मृत्यु पर कुमार अभग्नसेन ने पाँच सौ चोरों के साथ रोते हुए, आक्रन्दन करते हुए और विलाप करते हुए अत्यन्त ठाठ के साथ एवं सत्कार सम्मान के साथ विजय चोर सेनापति का नीहरण किया । बहुत से लौकिक मृतककृत्य किए । थोड़े समय के पश्चात् अभग्नसेन शोक रहित हो गया ।

तदनन्तर उन पाँच सौ चोरों से बड़े महोत्सव के साथ अभग्नसेन को शालाटवी नामक चोरपल्ली में चोर सेनापति के पद पर प्रस्थापित किया । सेनापति के पद पर नियुक्त हुआ वह अभग्नसेन, अधार्मिक, अधर्मनिष्ठ, अधर्मदर्शी एवं अधर्म का आचरण करता हुआ यावत् राजदेय कर-महसूल को भी ग्रहण करने लगा । तदनन्तर अभग्नसेन चोर सेनापति के द्वारा बहुत ग्रामों के विनाश से सन्तप्त हुए उस देश के लोगों ने एक दूसरे को बुलाकर इस प्रकार कहा–हे देवानुप्रियो ! चोर सेनापति अभग्नसेन पुरिमताल नगर के उत्तरदिशा के बहुत से ग्रामों का विनाश करके वहाँ के लोगों को धन-धान्यादि से रहित कर रहा है । इसलिए हे देवानुप्रियो ! पुरिमताल नगर के महाबल राजा को इस बात से संसूचित करना अपने लिए श्रेयस्कर है । तदनन्तर देश के एकत्रित सभी जनों जहाँ पर महाबल राजा था, वहाँ महार्थ, महार्ध, महार्ह व राजा के योग्य भेंट लेकर आए और दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर दस नखों वाली अंजलि करके महाराज को वह मूल्यवान भेंट अर्पण की । अर्पण करके महाबल राजा से बोले– 'हे स्वामिन् ! शालाटवी नामक चोरपल्ली का चोर सेनापति अभग्नसेन ग्रामघात तथा नगरघात आदि करके यावत् हमें निर्धन बनाता है । हम चाहते हैं कि आपकी भुजाओं की छाया से संरक्षित होते हुए निर्भय और उपसर्ग रहित होकर हम सुखपूर्वक निवास करें । इस प्रकार कहकर, पैरों में पड़कर तथा दोनों हाथ जोड़कर उन प्रान्तीय पुरुषों ने महाबल नरेश से विज्ञप्ति की ।

महाबल नरेश उन जनपदवासियों के पास से उक्त वृत्तान्त को सूनकर रुष्ट, कुपित और क्रोध से तमतमा

उठे । उसके अनुरूप क्रोध से दाँत पीसते हुए भोहें चढ़ाकर कोतवाल को बुलाते हैं और कहते हैं–देवानुप्रिय ! तुम जाओ और शालाटवी नामक चोरपल्ली को नष्ट-भ्रष्ट कर दो और उसके चोर सेनापति अभग्नसेन को जीवित पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो । महाबल राजा की आज्ञा को दण्डनायक विनयपूर्वक स्वीकार करता हुआ, दृढ़ बंधनों से बंधे हुए लोहमय कुसूलक आदि से युक्त कवच को धारण कर आयुधों और प्रहरणों से युक्त अनेक पुरुषों को साथ में लेकर, हाथों में फलक-ढाल बाँधे हुए यावत् क्षिप्रतूर्य के बजाने से महान् उत्कृष्ट महाध्वनि एवं सिंहनाद आदि के द्वारा समुद्र की सी गर्जना करते हुए, आकाश को विदीर्ण करते हुए पुरिमताल नगर के मध्य से नीकलकर शालाटवी चोरपल्ली की ओर जाने का निश्चय करता है ।

तदनन्तर अभग्नसेन चोर सेनापति के गुप्तचरों को इस वृत्तान्त का पता लगा । वे सालाटवी चोरपल्ली में, जहाँ अभग्नसेन चोर सेनापति था, आए और दोनों हाथ जोड़कर और मस्तक पर दस नखों वाली अंजलि करके अभग्नसेन से इस प्रकार बोले–हे देवानुप्रिय ! पुरिमताल नगर में महाबल राजा ने महान् सुभटों के समुदायों के साथ दण्डनायक-कोतवाल को बुलाकर आज्ञा दी है कि–'तुम लोग शीघ्र जाओ, जाकर सालाटवी चोरपल्ली को नष्ट-भ्रष्ट कर दो और उसके सेनापति अभग्नसेन को जीवित पकड़ लो और पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो ।' राजा की आज्ञा को शिरोधार्य करके कोतवाल योद्धाओं के समूह के साथ सालाटवी चोरपल्ली में आने के लिए रवाना हो चूका है । तदनन्तर उस अभग्नसेन सेनापति ने अपने गुप्तचरों की बातों को सूनकर तथा विचारकर अपने पाँच सौ चोरों को बुलाकर कहा–देवानुप्रियो ! पुरिमताल नगर के महाबल राजा ने आज्ञा दी है कि यावत् दण्डनायक ने चोरपल्ली पर आक्रमण करने का तथा मुझे जीवित पकड़ने को यहाँ आने का निश्चय कर लिया है, अतः उस दण्डनायक को सालाटवी चोर-पल्ली पहुँचने से पहले ही मार्ग में रोक देना हमारे लिए योग्य है । अभग्नसेन सेनापति के इस परामर्श को 'तथेति' ऐसा कहकर पाँच सौ चोरों ने स्वीकार किया ।

तदनन्तर अभग्नसेन चोर सेनापति ने अशन, पान, खादिम और स्वादिम–अनेक प्रकार की स्वादिष्ट भोजन सामग्री तैयार कराई तथा पाँच सौ चोरों के साथ स्नानादि क्रिया कर दुःस्वप्नादि के फलों को निष्फल करने के लिए मस्तक पर तिलक तथा अन्य माङ्गलिक कृत्य करके भोजनशाला में उस विपुल अशनादि वस्तुओं तथा पाँच प्रकार की मदिराओं का यथारुचि आस्वादन, विस्वादन आदि किया । भोजन के पश्चात् योग्य स्थान पर आचमन किया, मुख के लेपादि को दूर कर, परम शुद्ध होकर, पाँच सौ चोरों के साथ आर्द्रचर्म पर आरोहण किया । दृढ़बन्धनों से बंधे हुए, लोहमय कसूलक आदि से युक्त कवच को धारण करके यावत् आयुधों और प्रहरणों से सुसज्जित होकर हाथों में ढालें बाँधकर यावत् महान् उत्कृष्ट, सिंहनाद आदि शब्दों के द्वारा समुद्र के समान गर्जन करते हुए एवं आकाशमण्डल को शब्दायमान करते हुए अभग्नसेन ने सालाटवी चोरपल्ली से मध्याह्न के समय प्रस्थान किया । खाद्य पदार्थों को साथ लेकर विषम और दूर्ग-गहन वन में ठहरकर वह दण्डनायक की प्रतीक्षा करने लगा ।

उसके बाद वह कोतवाल जहाँ अभग्नसेन चोर सेनापति था, वहाँ पर आता है, और आकर अभग्नसेन चोर सेनापति के साथ युद्ध में संप्रवृत हो जाता है । तदनन्तर, अभग्नसेन चोर सेनापति ने उस दण्डनायक को शीघ्र ही हतमथित कर दिया, वीरों का घात किया, ध्वजा पताका को नष्ट कर दिया, दण्डनायक का भी मानमर्दन कर उसे और उसके साथियों को इधर उधर भगा दिया । तदनन्तर अभग्नसेन चोर सेनापति के द्वारा हत-मथित यावत् प्रतिषेधित होने से तेजोहीन, बलहीन, वीर्यहीन तथा पुरुषार्थ और पराक्रम से हीन हुआ वह दण्डनायक शत्रुसेना को परास्त करना अशक्य जानकर पुनः पुरिमताल नगर में महाबल नरेश के पास आकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर दसों नखों की अञ्जलि कर इस प्रकार कहने लगा–प्रभो ! चोर सेनापति अभग्नसेन ऊंचे, नीचे और दुर्ग-गहन वन में पर्याप्त खाद्य तथा पेय सामग्री के साथ अवस्थित है । अतः बहुल अश्वबल, गजबल, योद्धाबल और रथबल, कहाँ तक कहूँ–चतुरङ्गिणी सेना के साक्षात् बल से भी वह जीते जी पकड़ा नहीं जा सकता है ! तब राजा ने सामनीति, भेदनीति व उपप्रदान नीति से उसे विश्वास में लाने के लिए प्रवृत्त हुआ । तदर्थ वह उसके शिष्य-तुल्य, समीप में रहने वाले पुरुषों को तथा मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों को धन, स्वर्ण, रत्न

और उत्तम सारभूत द्रव्यों के द्वारा तथा रुपयों पैसों का लोभ देकर उससे जुदा करने का प्रयत्न करता है और अभग्नसेन चोर सेनापति को भी बार बार महाप्रयोजन वाली, सविशेष मूल्य वाली, बड़े पुरुष को देने योग्य यहाँ तक कि राजा के योग्य भेंट भेजने लगा । इस तरह भेंट भेजकर अभग्नसेन चोर सेनापति को विश्वास में ले आता है

सूत्र - २३

तदनन्तर किसी अन्य समय महाबल राजा ने पुरिमताल नगर में महती सुन्दर व अत्यन्त विशाल, मन में हर्ष उत्पन्न करने वाली, दर्शनीय, जिसे देखने पर भी आँखें न थकें ऐसी सैकड़ों स्तम्भों वाली कूटाकारशाला बनवायी । उसके बाद महाबल नरेश ने किसी समय उस षड्यन्त्र के लिए बनवाई कूटाकारशाला के निमित्त उच्छुल्क यावत् दश दिन के प्रमोद उत्सव की उद्घोषणा कराई । कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा कि–हे भद्रपुरुषों ! तुम शालाटवी चोरपल्ली में जाओ और वहाँ अभग्नसेन चोर सेनापति से दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर दस नखों वाली अञ्जलि करके, इस प्रकार निवेदन करो–हे देवानुप्रिय ! पुरिमताल नगर में महाबल नरेश ने उच्छुल्क यावत् दश दिन पर्यन्त प्रमोद-उत्सव की घोषणा कराई है, तो क्या आप के लिए विपुल अशन, पान, खादिम और स्वादिम तथा पुष्प वस्त्र माला अलङ्कार यहीं पर लाकर उपस्थित किए जाएं अथवा आप स्वयं वहाँ इस प्रसंग पर उपस्थित होंगे?

तदनन्तर वे कौटुम्बिक पुरुष महाबल नरेश की इस आज्ञा को दोनों हाथ जोड़कर यावत् अञ्जलि करके 'जी हाँ स्वामी' कहकर विनयपूर्वक सूनते हैं, सूनकर पुरिमताल नगर से नीकलते हैं । छोटी-छोटी यात्राएं करते हुए, तथा सुखजनक विश्राम-स्थानों पर प्रातःकालीन भोजन आदि करते हुए जहाँ शालाटवी नामक चोर-पल्ली थी वहाँ पहुँचे । वहाँ पर अभग्नसेन चोर सेनापति से दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर दसों नखोंवाली अञ्जलि करके इस प्रकार निवेदन करने लगे–देवानुप्रिय ! पुरिमताल नगरमें महाबल नरेश ने उच्छुल्क यावत् दस दिनों का प्रमोद उत्सव घोषित किया है, तो आपके लिए अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्पमाला, अलंकार यहाँ पर ही उपस्थित किये जाएं अथवा आप स्वयं वहाँ पधारते हैं ? तब अभग्नसेन सेनापति ने कहा–'हे पुरुषों ! मैं स्वयं ही प्रमोद-उत्सवमें पुरिमताल नगर आऊंगा ।' तत्पश्चात् अभग्नसेन ने उनका उचित सत्कार-सम्मान करके उन्हें बिदा किया ।

तदनन्तर मित्र, ज्ञाति व स्वजन-परिजनों से घिरा हुआ वह अभग्नसेन चोर सेनापति स्नानादि से निवृत्त हो यावत् अशुभ स्वप्न का फल विनष्ट करने के लिए प्रायश्चित्त के रूप में मस्तक पर तिलक आदि माङ्गलिक अनुष्ठान करके समस्त आभूषणों से अलंकृत हो शालाटवी चोरपल्ली से नीकलकर जहाँ पुरिमताल नगर था और महाबल नरेश थे, वहाँ पर आता है । आकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर दश नखों वाली अञ्जलि करके महाबल राजा को 'जय-विजय शब्द से बधाई देकर महार्थ यावत् राजा के योग्य प्राभृत-भेंट अर्पण करता है । तदनन्तर महाबल राजा उस अभग्नसेन चोर सेनापति द्वारा अर्पित किए गए उपहार को स्वीकार करके उसे सत्कार-सम्मानपूर्वक-अपने पास से बिदा करता हुआ कूटाकारशाला में उसे रहने के लिए स्थान देता है । तदनन्तर अभग्नसेन चोर सेनापति महाबल राजा के द्वारा सत्कारपूर्वक विसर्जित होकर कूटाकारशाला में आता है और वहाँ पर ठहरता है ।

इसके बाद महाबल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–तुम लोग विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, गंधमाला, अलंकार एवं सूरादि मदिराओं तैयार कराओ और कूटाकार-शालामें चोर सेनापति अभग्नसेन की सेवामें पहुँचा दो। कौटुम्बिक पुरुषों ने हाथ जोड़कर यावत् अञ्जलि करके राजा की आज्ञा स्वीकार की और तदनुसार विपुल अशनादिक सामग्री वहाँ पहुँचा दी । तदनन्तर अभग्नसेन चोर सेनापति स्नानादि से निवृत्त हो, समस्त आभूषणों को पहनकर अपने बहुत से मित्रों व ज्ञातिजनों आदि के साथ उस विपुल अशनादिक तथा पंचविध मदिराओं का सम्यक् आस्वादन विस्वादन करता हुआ प्रमत्त-बेखबर होकर विहरण करने लगा ।

पश्चात् महाबल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को इस प्रकार कहा–'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और जाकर पुरिमताल नगर के दरवाजों को बन्द कर दो और अभग्नसेन चोर सेनापति को जीवित स्थिति में ही पकड़ लो और पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो ।' तदनन्तर कौटुम्बिक पुरुषों ने राजा की यह आज्ञा हाथ जोड़कर

यावत् दश नखों वाली अञ्जलि करके शिरोधार्य की और पुरिमताल नगर के द्वारों को बन्द करके चोर सेनापति अभग्नसेन को जीवित पकड़कर महाबल नरेश के समक्ष उपस्थित किया । तत्पश्चात् महाबल नरेश ने अभग्नसेन चोर सेनापति को इस विधि से वध करने की आज्ञा प्रदान कर दी । हे गौतम ! इस प्रकार निश्चित रूप से वह चोर सेनापति अभग्नसेन पूर्वोपार्जित पापकर्मों के नरक तुल्य विपाकोदय के रूपमें घोर वेदना का अनुभव कर रहा है ।

अहो भगवन् ! वह अभग्नसेन चोर सेनापति कालावसर में काल करके कहाँ जाएगा ? तथा कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! अभग्नसेन चोर सेनापति ३७ वर्ष की परम आयु को भोगकर आज ही त्रिभागावशेष दिनमें सूली पर चढ़ाये जाने से काल करके रत्नप्रभा नामक प्रथम नरकमें उत्कृष्ट एक सागरोपम स्थितिक नारकी रूप से उत्पन्न होगा । फिर प्रथम नरक से नीकलकर प्रथम अध्ययन में प्रतिपादित मृगापुत्र के संसार-भ्रमण की तरह इसका भी परिभ्रमण होगा, यावत् पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, तेजस्काय आदि में लाखों बार उत्पन्न होगा । वहाँ से नीकलकर बनारस नगरीमें शूकर के रूप में उत्पन्न होगा । वहाँ शूकर के शिकारियों द्वारा उसका घात किया जाएगा । तत्पश्चात् उसी बनारस नगरी के श्रेष्ठिकुलमें पुत्र रूप से उत्पन्न होगा । वहाँ बालभाव पार कर युवावस्था को प्राप्त होता हुआ, प्रव्रजित होकर, संयमपालन करके यावत् निर्वाण पद प्राप्त करेगा–निक्षेप पूर्ववत् ।

अध्ययन-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-४ – शकट

सूत्र - २४

जम्बूस्वामी ने प्रश्न किया–भन्ते ! यदि श्रमण भगवान महावीर ने, जो यावत् निर्वाणप्राप्त हैं, यदि तीसरे अध्ययन का यह अर्थ कहा तो भगवान ने चौथे अध्ययन का क्या अर्थ कहा है ? तब सुधर्मा स्वामी ने जम्बू अनगार से इस प्रकार कहा–हे जम्बू ! उस काल उस समय में साहंजनी नाम की एक ऋद्ध-भवनादि की सम्पत्ति से सम्पन्न, स्तिमित तथा समृद्ध नगरी थी । उसके बाहर ईशानकोण में देवरमण नाम का एक उद्यान था । उस उद्यान में अमोघ नामक यक्ष का एक पुरातन यक्षायतन था । उस नगरी में महचन्द्र राजा था । वह हिमालय के समान दूसरे राजाओं से महान था । उस महचन्द्र नरेश का सुषेण मन्त्री था, जो सामनीति, भेदनीति, दण्डनीति और उपप्रदाननीति के प्रयोग को और न्याय नीतियों की विधि को जानने वाला तथा निग्रह में कुशल था । उस नगर में सुदर्शना नाम की एक सुप्रसिद्ध गणिका-वेश्या रहती थी ।

उस नगरी में सुभद्र नाम का सार्थवाह था । उस सुभद्र सार्थवाह की निर्दोष सर्वाङ्गसुन्दर शरीरवाली भद्रा भार्या थी । समुद्र सार्थवाह का पुत्र व भद्रा भार्या का आत्मज शकट नाम का बालक था । वह भी पंचेन्द्रियों से परिपूर्ण–सुन्दर शरीर से सम्पन्न था ।

उस काल, उस समय साहंजनी नगरी के बाहर देवरमण उद्यान में श्रमण भगवान महावीर पधारे । नगर से जनता और राजा नीकले । भगवान ने धर्मदेशना दी । राजा और प्रजा सब वापस लौट गए ।

उस काल तथा उस समय में श्रमण भगवान महावीर ने ज्येष्ठ अन्तेवासी श्री गौतम स्वामी यावत् राजमार्ग में पधारे । वहाँ उन्होंने हाथी, घोड़े और बहुतेरे पुरुषों को देखा । उन पुरुषों के मध्य में अवकोटक बन्धन से युक्त, कटे कान और नाक वाले यावत् उद्घोषणा सहित एक सस्त्रीक पुरुष को देखा । देखकर गौतम स्वामी ने पूर्ववत् विचार किया और भगवान से आकर प्रश्न किया । भगवान ने इस प्रकार कहा–हे गौतम ! उस काल तथा उस समय में इसी जम्बूद्वीप अन्तर्गत भारतवर्ष में छगलपुर नगर था । वहाँ सिंहगिरि राजा राज्य करता था । वह हिमालयादि पर्वतों के समान महान था । उस नगर में छण्णिक नामक एक छागलिक कसाई रहता था, जो धनाढ्य, अधर्मी यावत् दुष्प्रत्यानन्द था ।

उस छण्णिक छागलिक के अनेक अजो, रोझो, वृषभों, खरगोशो, मृगशिशुओं, शूकरो, सिंहो, हरिणो, मयूरो और महषि के शतबद्ध तथा सहस्रबद्ध यूथ, बाड़े में सम्यक् प्रकार से रोके हुए रहते थे । वहाँ जिनको वेतन के रूप में भोजन तथा रुपया पैसा दिया जाता था, ऐसे उसके अनेक आदमी अजादि और महिषादि पशुओं का संरक्षण-संगोपन करते हुए उन पशुओं को बाड़े में रोके रहते थे । अनेक नौकर पुरुष सैकड़ों तथा हजारों अजों तथा भैसों को मारकर उनके माँसों को कैंची तथा छूरी से काटकर छण्णिक छागलिक को दिया करते थे । उसके अन्य अनेक नौकर उन बहुत से बकरों के माँसों तथा महिषों के माँसों को तवों पर, कड़ाहों में, हांडों में अथवा कड़ाहियों या लोहे के पात्रविशेषों में, भूनने के पात्रों में, अंगारों पर तलते, भूनते और शूल द्वारा पकाते हुए अपनी आजीविका चलाते थे । वह छण्णिक स्वयं भी उन माँसों के साथ सूरा आदि पाँच प्रकार के मद्यों का आस्वादन विस्वादन करता हुआ वह जीवनयापन कर रहा था । उस छण्णिक छागलिक ने अजादि पशुओं के माँसों को खाना तथा मदिराओं का पीना अपना कर्तव्य बना लिया था । इन्हीं पापपूर्ण प्रवृत्तियों में वह सदा तत्पर रहता था । और ऐसे ही पापपूर्ण कर्मों को उसने अपना सर्वोत्तम आचरण बना रखा था । अत एव वह क्लेशोत्पादक और कालुष्य पूर्ण अत्यधिक क्लिष्ट कर्मों का उपार्जन कर, सात सौ वर्ष की आयु पालकर कालमास में काल करके चतुर्थ नरक में, उत्कृष्ट दस सागरोपम स्थिति वाले नारकियों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ ।

सूत्र - २५

तदनन्तर उस सुभद्र सार्थवाह की भद्रा नामकी भार्या जातनिन्दुका थी । उसके उत्पन्न होते हुए बालक मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे । इधर छण्णिक नामक छागलिक का जीव चतुर्थ नरक से नीकलकर सीधा इसी

साहंजनी नगरी में सुभद्र सार्थवाह की भद्रा नामकी भार्या के गर्भ में पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ । लगभग नौ मास परिपूर्ण हो जाने पर किसी समय भद्रा नामक भार्या ने बालक को जन्म दिया । उत्पन्न होते ही माता-पिता ने उस बालक को शकट के नीचे स्थापित कर दिया–रख दिया और फिर उठा लिया । उठाकर यथाविधि संरक्षण, संगोपन व संवर्द्धन किया । यावत् यथासमय उसके माता-पिता ने कहा–उत्पन्न होते ही हमारा यह बालक शकट के नीचे स्थापित किया गया था, अतः इसका 'शकट' ऐसा नामाभिधान किया जाता है । शकट का शेष जीवन उज्झित की तरह समझना ।

इधर सुभद्र सार्थवाह लवणसमुद्र में कालधर्म को प्राप्त हुआ और शकट की माता भद्रा भी मृत्यु को प्राप्त हो गई । तब शकटकुमार को राजपुरुषों के द्वारा घर से नीकाल दिया गया । अपने घर से नीकाले जाने पर शकट-कुमार साहंजनी नगरी के शृंगाटक आदि स्थानों में भटकता रहा तथा जुआरियों के अड्डों तथा शराबघरों में घूमने लगा । किसी समय उसकी सुदर्शना गणिका के साथ गाढ़ प्रीति हो गई । तदनन्तर सिंहगिरि राजा का अमात्य–मन्त्री सुषेण किसी समय उस शकटकुमार को सुदर्शना वेश्या के घर से नीकलवा देता है और सुदर्शना गणिका को अपने घर में पत्नी के रूप में रख लेता है । इस तरह घर में पत्नी के रूप में रखी हुई सुदर्शना के साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार विशिष्ट कामभोगों को यथारुचि उपभोग करता हुआ समय व्यतीत करता है ।

घर से नीकाला गया शकट सुदर्शना वेश्या में मूर्च्छित, गृद्ध, अत्यन्त आसक्त होकर अन्यत्र कहीं भी सुख चैन, रति, शान्ति नहीं पा रहा था । उसका चित्त, मन, लेश्या अध्यवसाय उसी में लीन रहता था । वह सुदर्शना के विषय में ही सोचा करता, उसमें करणों को लगाए रहता, उसी की भावना से भावित रहता । वह उसके पास जाने की ताक में रहता और अवसर देखता रहता था । एक बार उसे अवसर मिल गया । वह सुदर्शना के घर में घूस गया और फिर उसके साथ भोग भोगने लगा । इधर एक दिन स्नान करके तथा सर्व अलङ्कारों से विभूषित होकर अनेक मनुष्यों से परिवेष्टित सुषेण मंत्री सुदर्शना के घर पर आया । आते ही उसने सुदर्शना के साथ यथारुचि कामभोगों का उपभोग करते हुए शकटकुमार को देखा । देखकर वह क्रोध के वश लाल-पीला हो, दाँत पीसता हुआ मस्तक पर तीन सल वाली भृकुटि चढ़ा लेता है । शकटकुमार को अपने पुरुषों से पकड़वाकर यष्टियों, मुट्ठियों, घुटनों, कोहनियों से उसके शरीर को मथित कर अवकोटकबन्धन से जकड़वा लेता है । तदनन्तर उसे महाराज महचन्द्र के पास ले जाकर दोनों हाथ जोड़कर तथा मस्तक पर दसों नख वाली अञ्जलि करके इस प्रकार निवेदन करता है–'स्वामिन् ! इस शकटकुमार ने मेरे अन्तःपुर में प्रवेश करने का अपराध किया है ।'

महाराज महचन्द्र सुषेण मंत्री से इस प्रकार बोले–'देवानुप्रिय ! तुम ही इसको अपनी ईच्छानुसार दण्ड दे सकते हो ।' तत्पश्चात् महाराज महचन्द्र से आज्ञा प्राप्त कर सुषेण अमात्य ने शकटकुमार और सुदर्शना गणिका को पूर्वोक्त विधि से वध करने की आज्ञा राजपुरुषों को प्रदान की ।

सूत्र - २६

शकट की दुर्दशा का कारण भगवान से सूनकर गौतम स्वामी ने प्रश्न किया–हे प्रभो ! शकटकुमार बालक यहाँ से काल करके कहाँ जाएगा और कहाँ पर उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! शकट दारक को ५७ वर्ष की परम आयु को भोगकर आज ही तीसरा भाग शेष रहे दिन में एक महालोहमय तपी हुई अग्नि के समान देदीप्यमान स्त्रीप्रतिमा से आलिङ्गन कराया जाएगा । तब वह मृत्यु-समय में मरकर रत्नप्रभा नाम की प्रथम नरक भूमि में नारक रूप से उत्पन्न होगा । वहाँ से नीकलकर राजगृह नगर में मातङ्ग कुल में युगल रूप से उत्पन्न होगा । युगल के माता-पिता बारहवें दिन उनमें से बालक का नाम 'शकटकुमार' और कन्या का नाम 'सुदर्शना' रखेंगे ।

तदनन्तर शकटकुमार बाल्यभाव को त्याग कर यौवन को प्राप्त करेगा । सुदर्शना कुमारी भी बाल्यावस्था पार करके विशिष्ट ज्ञानबुद्धि की परिपक्वता को प्राप्त करती हुई युवावस्था को प्राप्त होगी । वह रूप, यौवन व लावण्य में उत्कृष्ट–श्रेष्ठ व सुन्दर शरीर वाली होगी । तदनन्तर सुदर्शना के रूप, यौवन और लावण्य की सुन्दरता में मूर्च्छित होकर शकटकुमार अपनी बहिन सुदर्शना के साथ ही मनुष्य सम्बन्धी प्रधान कामभोगों का सेवन करता

हुआ जीवन व्यतीत करेगा । किसी समय वह शकटकुमार स्वयमेव कूटग्राहित्व को प्राप्त कर विचरण करेगा । वह कूटग्राह बना हुआ वह महाअधर्मी एवं दुष्प्रत्यानन्द होगा । इन अधर्म-प्रधान कर्मों से बहुत से पापकर्मों को उपार्जित कर मृत्युसमय में मरकर रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में नारकी रूप से उत्पन्न होगा । उसका संसार-भ्रमण भी पूर्ववत् जानना यावत् वह पृथ्वीकाय आदि में लाखों-लाखों बार उत्पन्न होगा । वहाँ से वाराणसी नगरी में मत्सय के रूप में जन्म लेगा । वहाँ पर मत्स्यघातकों के द्वारा वध को प्राप्त होकर यह फिर उसी वाराणसी नगरी में एक श्रेष्ठिकुल में पुत्ररूप से उत्पन्न होगा । वहाँ सम्यक्त्व एवं अनगार धर्म को प्राप्त करके सौधर्म नामक प्रथम देवलोक में देव होगा । वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा । वहाँ साधुवृत्ति का सम्यक्तया पालन करके सिद्ध, बुद्ध होगा, समस्त कर्मों और दुःखों का अन्त करेगा ।

अध्ययन-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-५ – बृहस्पतिदत्त

सूत्र - २७

पाँचवे अध्ययन का उत्क्षेप-प्रस्तावना पूर्ववत् जानना । हे जम्बू ! उस काल और उस समय में कौशाम्बी नगरी थी, जो भवनादि के आधिक्य से युक्त, स्वचक्र-परचक्र के भय से मुक्त तथा समृद्धि से समृद्ध थी । उस नगरी के बाहर चन्द्रावतरण उद्यान था । उसमें श्वेतभद्र यक्ष का आयतन था ।

उस कौशाम्बी नगरी में शतानीक राजा था । जो हिमालय पर्वत आदि के समान महान् और प्रतापी था । उसको मृगादेवी रानी थी । उस शतानीक राजा का पुत्र और रानी मृगादेवी का आत्मज उदयन नाम का एक कुमार था, जो सर्वेन्द्रिय सम्पन्न था और युवराज पद से अलंकृत था । उस उदयनकुमार की पद्मावती नाम की देवी थी । उस शतानीक राजा का सोमदत्त पुरोहित था, जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का पूर्ण ज्ञाता था । उस सोमदत्त पुरोहित को वसुदत्ता नाम की भार्या थी, तथा सोमदत्त का पुत्र एवं वसुदत्ता का आत्मज बृहस्पतिदत्त नाम का सर्वाङ्गसम्पन्न एक सुन्दर बालक था ।

उस काल तथा उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी कौशाम्बी नगरी के बाहर चन्द्रावतरण उद्यान में पधारे । गौतम स्वामी पूर्ववत् कौशाम्बी नगरी में भिक्षार्थ गए । और लौटते हुए राजमार्ग में पधारे । वहाँ हाथियों, घोड़ों और बहुसंख्यक पुरुषों को तथा उन पुरुषों के बीच एक वध्य पुरुष को देखा । उनको देखकर मन में विचार करते हैं और स्वस्थान पर आकर भगवान से उसके पूर्व-भव के सम्बन्ध में पृच्छा करते हैं । भगवान इस प्रकार वर्णन करते हैं–हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भरतक्षेत्र में सर्वतोभद्र नाम का एक भवनादि के आधिक्य से युक्त उपद्रवों से मुक्त तथा धनधान्यादि से परिपूर्ण नगर था । उस सर्वतोभद्र नगर में जितशत्रु राजा था । महेश्वरदत्त पुरोहित था जो ऋग्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में कुशल था ।

महेश्वरदत्त पुरोहित जितशत्रु राजा के राज्य की एवं बल की वृद्धि के लिए प्रतिदिन एक-एक ब्राह्मण बालक, क्षत्रिय बालक, वैश्य बालक और शूद्र बालक को पकड़वा लेता था और पकड़वा कर, जीते जी उनके हृदयों के माँसपिण्डों को ग्रहण करवाता-नीकलवा लेता था और जितशत्रु राजा के निमित्त उनसे शान्ति-होम किया करता था । इसके अतिरिक्त वह पुरोहित अष्टमी और चतुर्दशी के दिन दो-दो बालकों के, चार-चार मास में चार-चार के, छह मास में आठ-आठ बालकों के और संवत्सर-वर्ष में सोलह-सोलह बालकों के हृदयों के माँसपिण्डों से शान्तिहोम किया करता था । जब-जब जितशत्रु राजा का किसी शत्रु के साथ युद्ध होता तब-तब वह महेश्वरदत्त पुरोहित एक सौ आठ ब्राह्मण बालकों, एक सौ आठ क्षत्रिय बालकों, एक सौ आठ वैश्य बालकों और एक सौ आठ शूद्रबालकों को अपने पुरुषों द्वारा पकड़वाकर और जीते जी उनके हृदय के माँसपिण्डों को नीकलवाकर जितशत्रु नरेश की विजय के निमित्त शान्तिहोम करता था । उसके प्रभाव से जितशत्रु राजा शीघ्र ही शत्रु का विध्वंस कर देता या उसे भगा देता था ।

सूत्र - २८

इस प्रकार के क्रूर कर्मों का अनुष्ठान करने वाला, क्रूर कर्मों में प्रधान, नाना प्रकार के पापकर्मों को एकत्रित कर अन्तिम समय में वह महेश्वरदत्त पुरोहित तीन हजार वर्ष का परम आयुष्य भोगकर पाँचवे नरक में उत्कृष्ट सत्तरह सागरोपम की स्थिति वाले नारक के रूप में उत्पन्न हुआ । पाँचवे नरक से नीकलकर सीधा इसी कौशाम्बी नगरी में सोमदत्त पुरोहित की वसुदत्ता भार्या के उदर में पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ । उस बालक के माता-पिता ने जन्म से बारहवे दिन नामकरण संस्कार करते हुए कहा–यह बालक सोमदत्त का पुत्र और वसुदत्ता का आत्मज होने के कारण इसका बृहस्पतिदत्त यह नाम रखा जाए । तदनन्तर वह बृहस्पतिदत्त बालक पाँच धायमाताओं से परिगृहीत यावत् वृद्धि को प्राप्त करता हुआ तथा बालभाव को पार करके युवावस्था को प्राप्त होता हुआ, परिपक्व विज्ञान को उपलब्ध किये हुए वह उदयन कुमार का बाल्यकाल से ही प्रिय मित्र हो गया । कारण यह था कि ये दोनों एक साथ ही उत्पन्न हुए, एक साथ बढ़े और एक साथ ही दोनों ने धूलि-क्रीड़ा की थी ।

तदनन्तर किसी समय राजा शतानीक कालधर्म को प्राप्त हो गया । तब उदयनकुमार बहुत से राजा, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी सेनापति और सार्थवाह आदि के साथ रोता हुआ, आक्रन्दन करता हुआ तथा विलाप करता हुआ शतानीक नरेश का राजकीय समृद्धि के अनुसार सन्मानपूर्वक नीहरण तथा मृतक सम्बन्धी सम्पूर्ण लौकिक कृत्यों को करता है । तदनन्तर उन राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि ने मिलकर बड़े समारोह के साथ उदयन कुमार का राज्याभिषेक किया । उदयनकुमार हिमालय पर्वत समान महान राजा हो गया ।

तदनन्तर बृहस्पतिदत्त कुमार उदयन नरेश का पुरोहित हो गया और पौरोहित्य कर्म करता हुआ सर्वस्थानों, सर्व भूमिकाओं तथा अन्तःपुर में भी ईच्छानुसार बेरोक-टोक गमनागमन करने लगा । तत्पश्चात् वह बृहस्पतिदत्त पुरोहित उदय-नरेश के अन्तःपुर में समय-असमय, काल-अकाल तथा रात्रि एवं सन्ध्याकाल में स्वेच्छापूर्वक प्रवेश करते हुए धीरे धीरे पद्मावती देवी के साथ अनुचित सम्बन्ध वाला हो गया । पद्मावती देवी के साथ उदर यथेष्ट मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का सेवन करता हुआ समय व्यतीत करने लगा । इधर किसी समय उदयन नरेश स्नानादि से निवृत्त होकर और समस्त अलङ्कारों से अलंकृत होकर जहाँ पद्मावती देवी थी वहाँ आया । आकर उसने बृहस्पतिदत्त पुरोहित को पद्मावती देवी के साथ भोगोपभोग भोगते हुए देखा । देखते ही वह क्रोध से तमतमा उठा । मस्तक पर तीन वल वाली भृकुटि चढ़ाकर बृहस्पतिदत्त पुरोहित को पुरुषों द्वारा पकड़वाकर यष्टि, मुट्ठी, घुटने, कोहनी आदि के प्रहारों से उसके शरीर को भग्न कर दिया गया, मथ डाला और फिर इस प्रकार ऐसा कठोर दण्ड देने की राजपुरुषों को आज्ञा दी । हे गौतम ! इस तरह बृहस्पतिदत्त पुरोहित पूर्वकृत क्रूर पापकर्मों के फल को प्रत्यक्षरूप से अनुभव कर रहा है ।

हे भगवन् ! बृहस्पतिदत्त यहाँ से काल करके कहाँ जाएगा ? हे गौतम ! बृहस्पतिदत्त पुरोहित ६४ वर्ष की आयु को भोगकर दिन का तीसरा भाग शेष रहने पर शूली से भेदन किया जाकर कालावसर में काल करके रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक में उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में उत्पन्न होगा । वहाँ से नीकलकर प्रथम अध्ययन में वर्णित मृगापुत्र की तरह सभी नरकों में, सब तिर्यंचों में तथा एकेन्द्रियों में लाखों बार जन्म-मरण करेगा । तत्पश्चात् हस्तिनापुर नगर में मृग के रूप में जन्म लेगा । वहाँ पर वागुरिकों द्वारा मारा जाएगा । और इसी हस्तिनापुर में श्रेष्ठिकुल में पुत्ररूप से जन्म धारण करेगा । वहाँ सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा और काल करके सौधर्म देवलोक में उत्पन्न होगा । वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा । वहाँ पर अनगार वृत्ति धारण कर, संयम की आराधना करके सब कर्मों का अन्त करेगा । निक्षेप पूर्ववत् ।

अध्ययन-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-६ – नंदिवर्धन

सूत्र - २९

उत्क्षेप भगवन् ! यदि यावत् मुक्तिप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने पाँचवे अध्ययन का यह अर्थ कहा, तो षष्ठ अध्ययन का भगवान ने क्या अर्थ कहा है ? हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में मथुरा नगरी थी । वहाँ भण्डीर नाम का उद्यान था । सुदर्शनयक्ष का आयतन था । श्रीदाम राजा था, बन्धुश्री रानी थी । उनका सर्वाङ्ग-सम्पन्न युवराज पद से अलंकृत नन्दिवर्द्धन नामका सर्वाङ्गसुन्दर पुत्र था । श्रीदाम नरेश का सुबन्धु मन्त्री था, जो साम, दण्ड, भेद-उपप्रदान में कुशल था–उस मन्त्री के बहुमित्रापुत्र नामक सर्वाङ्गसम्पन्न व रूपवान् बालक था । श्रीदाम नरेश का, चित्र नामक अलंकारिक था । वह राजा का अनेकविध, क्षीरकर्म करता हुआ राजा की आज्ञा से सर्वस्थानों, सर्व-भूमिकाओं तथा अन्तःपुर में भी, बेरोक-टोक, आवागमन करता रहता था ।

उस काल उस समय में मथुरा नगरी में भगवान महावीर पधारे । परिषद् व राजा भगवान की धर्मदेशना श्रवण करने नगर से नीकले, यावत् वापिस चले गए । उस समय भगवान महावीर के प्रधान शिष्य गौतम स्वामी भिक्षा के लिए नगरी में पधारे । वहाँ उन्होंने हाथियों, घोड़ों और पुरुषों को देखा, तथा उन पुरुषों के मध्य में यावत् बहुत से नर-नारियों के वृन्द से घिरे हुए एक पुरुष को देखा । राजपुरुष उन पुरुष को चत्वर–स्थान में अग्नि के समान-सन्तप्त लोहमय सिंहासन पर बैठाते हैं । बैठाकर कोई-कोई राजपुरुष उसको अग्नि के समान उष्ण लोहे से परिपूर्ण, कोई ताम्रपूर्ण, कोई त्रपु-रांगा से पूर्ण, कोई सीसा से पूर्ण, कोई कलकल से पूर्ण, अथवा कलकल शब्द करते हुए अत्युष्ण पानी से परिपूर्ण, क्षारयुक्त तैल से पूर्ण, अग्नि के समान तपे कलशों के द्वारा महान् राज्याभिषेक से उसका अभिषेक करते हैं । तदनन्तर उसे, लोहमय संडासी से पकड़कर अग्नि के समान तपे हुए अयोमय, अर्द्धहार, यावत् पहनाते हैं । यावत् गौतमस्वामी उस पुरुष के पूर्वभव सम्बन्धी वृत्तान्त को भगवान से पूछते हैं ।

हे गौतम ! उस काल उस समय में इसी जम्बूद्वीप अन्तर्गत भारतवर्ष में सिंहपुर नामक एक ऋद्ध, स्तिमित व समृद्ध नगर था । वहाँ सिंहस्थ राजा था । दुर्योधन नाम का कारागाररक्षक था, जो अधर्मी यावत् कठिनाई से प्रसन्न होने वाला था । दुर्योधन नामक उस चारकपाल के निम्न चारकभाण्ड थे । अनेक प्रकार की लोहमय कुण्डियाँ थी, जिनमें से कई एक ताम्र से, कई एक त्रपुरांगा से, कई एक सीसे से, तो कितनीक चूर्णमिश्रित जल से भरी हुई थी और कितनीक क्षारयुक्त तैल से भरी थी, जो कि अग्नि पर रखी रहती थी । दुर्योधन चारकपाल के पास उष्ट्रिकाएं थे–उनमें से कईं एक अश्वमूत्र से, कितनेक हाथी के मूत्र से, कितनेक उष्ट्रमूत्र से, कितनेक गोमूत्र से, कितनेक महिषमूत्र से, कितनेक बकरे के मूत्र से तो कितनेक भेड़ों के मूत्र से भरे हुए थे ।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक हस्तान्दुक, पादान्दुक, हडि और शृंखला तथा नीकर लगाए हुए रखे थे । तथा उस दुर्योधन चारकपाल के पास वेणुलताओं, बेंत के चाबुकों, चिंता-इमली के चाबुकों, कोमल चर्म के चाबुकों, सामान्य चर्मयुक्त चाबुकों, वल्कलरश्मियों के पुंज व नीकर रखे रहते थे । उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक शिलाओं, लकड़ियों, मुद्गरों और कनंगरों के पुंज व नीकर रखे रहते थे । उस दुर्योधन चारकपाल के पास चमड़े की रस्सियों, सामान्य रस्सियों, वल्कल रज्जुओं, छाल से निर्मित रस्सियों, केशरज्जुओं और सूत्र रज्जुओं के पुञ्ज व नीकर रखे रहते थे ।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास असिपत्र, करपत्र, क्षुरपत्र और कदम्बचीरपत्र के भी पुञ्ज व नीकर रखे रहते थे । उस दुर्योधन चारकपाल के पास लोहे की कीलों, बाँस की सलाइयों, चमड़े के पट्टों व अल्लपट्ट के पुञ्ज व नीकर रखे हुए थे । उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक सूइयों, दम्भनों ऐसी सलाइयों तथा लघु मुद्गरों के पुञ्ज व नीकर रखे हुए थे । उस दुर्योधन के पास अनेक प्रकार के शस्त्र, पिप्पल, कुल्हाड़ों, नखच्छेदक एवं डाभ के अग्रभाग से तीक्ष्ण हथियारों के पुञ्ज व नीकर रखे हुए थे ।

तदनन्तर वह दुर्योधन चारपालक सिंहरथ राजा के अनेक चोर, परस्त्रीलम्पट, ग्रन्थिभेदक, राजा के अपकारी-दुश्मनों, ऋणधारक, बालघातकों, विश्वासघातियों, जुआरियों और धूर्त पुरुषों को राजपुरुषों के द्वारा

पकड़वाकर ऊर्ध्वमुख गिराता है और गिराकर लोहे के दण्डे से मुख को खोलता है और खोलकर कितनेक को तप्त तांबा पिलाता है, कितनेक को रांगा, सीसक, चूर्णादिमिश्रित जल अथवा कलकल करता हुआ अत्यन्त उष्ण जल और क्षारयुक्त तैल पिलाता है तथा कितनों का इन्हीं से अभिषेक कराता है । कितनों को ऊर्ध्वमुख गिराकर उन्हें अश्वमूत्र हस्तिमूत्र यावत् भेड़ों का मूत्र पिलाता है । कितनों को अधोमुख गिराकर छल छल शब्द पूर्वक वमन कराता है और कितनों को उसी के द्वारा पीड़ा देता है । कितनों को हथकड़ियों बेड़ियों से, हडिबन्धनों से व निगड बन्धनों से बद्ध करता है । कितनों के शरीर को सिकोड़ता व मरोड़ता है । कितनों को सांकलों से बाँधता है, तथा कितनों का हस्तछेदन यावत् शस्त्रों से चीरता-फाड़ता है । कितनों को वेणुलताओं यावत् वृक्षत्वचा के चाबुकों से पिटवाता है ।

कितनों को ऊर्ध्वमुख गिराकर उनकी छाती पर शिला व लक्कड़ रखवा कर उत्कम्पन कराता है, जिससे हड्डियाँ टूट जाएं । कितनों के चर्मरज्जुओं व सूत्ररज्जुओं से हाथों और पैरों को बँधवाता है, बंधवाकर कूए में उल्टा लटकवाता है, लटकाकर गोते खिलाता है । कितनों का असिपत्रों यावत् कलम्बचीरपत्रों से छेदन कराता है और उस पर क्षारमिश्रित तैल से मर्दन कराता है । कितनों के मस्तकों, कण्ठमणियों, घंटियों, कोहनियों, जानुओं तथा गुल्फों-गिट्टों में लोहे की कीलों को तथा बाँस की शलाकाओं को ठुकवाता है तथा वृश्चिककण्टकों-बिच्छु के काँटों को शरीर में प्रविष्ट कराता है ।

कितनों के हाथ की अंगुलियों तथा पैर की अंगुलियों में मुद्गरों के द्वारा सूईयों तथा दम्भनों–को प्रविष्ट कराता है तथा भूमि को खुदवाता है । कितनों का शस्त्रों व नेहरनों से अङ्ग छिलवाता है और दर्भों, कुशाओं तथा आर्द्र चर्मों द्वारा बंधवाता है । तदनन्तर धूप में गिराकर उनके सूखने पर चड़ चड़ शब्दपूर्वक उनका उत्पाटन कराता है । इस तरह वह दुर्योधन चारकपालक इस प्रकार की निर्दयतापूर्ण प्रवृत्तियों को अपना कर्म, विज्ञान व सर्वोत्तम आचरण बनाए हुए अत्यधिक पापकर्मों का उपार्जन करके ३१ सौ वर्ष की परम आयु भोगकर कालमास में काल करके छठे नरक में उत्कृष्ट २२ सागरोपम की स्थिति वाले नारकियों में नारक रूप में उत्पन्न हुआ ।

सूत्र - ३०

वह दुर्योधन चारकपाल का जीव छट्ठे नरक से नीकलकर इसी मथुरा नगरी में श्रीदाम राजा की बन्धुश्री देवी की कुक्षि में पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ । लगभग नौ मास परिपूर्ण होने पर बन्धुश्री ने बालक को जन्म दिया । तत्पश्चात् बारहवे दिन माता-पिता ने नवजात बालक का नन्दिषेण नाम रखा । तदनन्तर पाँच धायमाताओं से सार-संभाल किया जाता हुआ नन्दिषेणकुमार वृद्धि को प्राप्त होने लगा । जब वह बाल्यावस्था को पार करके युवावस्था को प्राप्त हुआ तब युवराज पद से अलंकृत भी हो गया । राज्य और अन्तःपुर में अत्यन्त आसक्त नंदिषेणकुमार श्रीदाम राजा को मारकर स्वयं ही राज्यलक्ष्मी को भोगने एवं प्रजा का पालन करने की ईच्छा करने लगा । एतदर्थ कुमार नन्दिषेण श्रीदाम राजा के अनेक अन्तर, छिद्र अथवा विरह ऐसे अवसर की प्रतीक्षा करने लगा ।

श्रीदाम नरेश के वध का अवसर प्राप्त न होने से कुमार नन्दिषेण ने किसी अन्य समय चित्र नामक अलंकारिक को बुलाकर कहा–देवानुप्रिय ! तुम श्रीदाम नरेश के सर्वस्थानों, सर्व भूमिकाओं तथा अन्तःपुर में स्वेच्छापूर्वक आ-जा सकते हो और श्रीदाम नरेश का बारबार क्षौरधर्म करते हो । अतः हे देवानुप्रिय ! यदि तुम श्रीदाम नरेश के क्षौरकर्म करने के अवसर पर उसकी गरदन में उस्तरा घुसेड़ दो तो मैं तुमको आधा राज्य दे दूँगा । तब तुम भी हमारे साथ उदार-प्रधान-कामभोगों का उपभोग करते हुए सानन्द समय व्यतीत कर सकोगे । चित्र नामक नाई ने कुमार नन्दिषेण के उक्त कथन को स्वीकार किया ।

परन्तु चित्र अलंकारिक के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि किसी प्रकार से श्रीदाम नरेश को इस षड्यन्त्र का पता लग गया तो न मालूम वे मुझे किस कुमौत से मारेंगे ? इस विचार से वह भयभीत हो उठा और एकान्त में गुप्त रूप से जहाँ महाराजा श्रीदाम थे, वहाँ आया । दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर अञ्जलि कर विनय पूर्वक इस प्रकार बोला–'स्वामिन् ! निश्चय ही नन्दिषेण कुमार राज्य में आसक्त यावत् अध्युपपन्न होकर आपका

वध करके स्वयं ही राज्यलक्ष्मी भोगना चाह रहा है ।' तब श्रीदाम नरेश ने विचार किया और अत्यन्त क्रोध में आकर नन्दिषेण को अपने अनुचरों द्वारा पकड़वाकर इस पूर्वोक्त विधान से मार डालने का राजपुरुषों को आदेश दिया । 'हे गौतम ! नन्दिषेण पुत्र इस प्रकार अपने किये अशुभ पापमय कर्मों के फल को भोग रहा है ।'

भगवान् ! नन्दिषेण कुमार मृत्यु के समय में यहाँ से काल करके कहाँ जाएगा । कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! यह नन्दिषेणकुमार साठ वर्ष की परम आयु को भोगकर मरके इस रत्नप्रभा नामक नरक में उत्पन्न होगा । इसका शेष संसारभ्रमण मृगापुत्र के अध्ययन की तरह समझना यावत् वह पृथ्वीकाय आदि सभी कार्यों में लाखों बार उत्पन्न होगा । पृथ्वीकाय से नीकलकर हस्तिनापुर नगर में मत्स्य के रूप में उत्पन्न होगा । वहाँ मच्छीमारों के द्वारा वध को प्राप्त होकर फिर वहीं हस्तिनापुर नगर में एक श्रेष्ठि-कुल में पुत्ररूप में उत्पन्न होगा । वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेगा । वहाँ पर चारित्र ग्रहण करेगा और उसका यथाविधि पालन कर उसके प्रभाव से सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा और परमनिर्वाण को प्राप्त कर सर्व प्रकार के दुःखों का अन्त करेगा ।

अध्ययन-६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-७ – उंबरदत्त

सूत्र - ३१

उत्क्षेप पूर्ववत् । हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में पाटलिखंड नगर था । वहाँ वनखण्ड उद्यान था । उस उद्यान में उम्बरदत्त नामक यक्ष का यक्षायतन था । उस नगर में सिद्धार्थ राजा था । पाटलिखण्ड नगर में सागरदत्त नामक धनाढ्य सार्थवाह था । उसकी गङ्गदत्ता भार्या थी । उस सागरदत्त का पुत्र व गङ्गदत्ता भार्या का आत्मज उम्बरदत्त नाम अन्यून व परिपूर्ण पञ्चेन्द्रियों से युक्त सुन्दर शरीर वाला एक पुत्र था । उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर वहाँ पधारे, यावत् धर्मोपदेश सूनकर राजा तथा परिषद् वापिस चले गए ।

उस काल तथा उस समय गौतम स्वामी के पारणे के निमित्त भिक्षा के लिए पाटलिखण्ड नगर में पूर्वदिशा के द्वार से प्रवेश करते हैं । वहाँ एक पुरुष को देखते हैं, वह पुरुष कण्डू, कोढ, जलोदर, भगन्दर तथा अर्श के रोग से ग्रस्त था । उसे खाँसी, श्वास व सूजन का रोग भी हो रहा था । उसका मुख, हाथ और पैर भी सूजे हुए थे । हाथ और पैर की अङ्गुलियाँ सड़ी हुई थीं, नाक और कान गले हुए थे । व्रणों से नीकलते सफेद गन्दे पानी तथा पीव से वह 'थिव थिव' शब्द कर रहा था । कृमियों से अत्यन्त ही पीड़ित तथा गिरते हुए पीव और रुधिरवाले व्रणमुखों से युक्त था । उसके कान और नाक फोड़े के बहाव के तारों से गल चूके थे । वारंवार वह पीव, रुधिर, तथा कृमियों के कवलों का वमन कर रहा था । वह कष्टोत्पादक, करुणाजनक एवं दीनतापूर्ण शब्द कर रहा था । उसके पीछे-पीछे मक्षिकाओं के झुण्ड के झुण्ड चले जा रहे थे । उसके सिर के बाल अस्तव्यस्त थे । उसने थिगलीवाले वस्त्रखंड धारण कर रखे थे । फूटे हुए घड़े का टुकड़ा उसका भिक्षापात्र था । सिकोरे का खंड उसका जल-पात्र था, जिसे वह हाथ में लिए हुए घर-घर में भिक्षावृत्ति के द्वारा आजीविका कर रहा था ।

इधर भगवान गौतम स्वामी ऊंच, नीच और मध्यम घरों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए पाटलिखण्ड नगर से नीकलकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आकर भक्तपान की आलोचना की और आहार-पानी भगवान को दिखलाकर, उनकी आज्ञा मिल जाने पर बिल में प्रवेश करते हुए सर्प की भाँति आहार करते हैं और संयम तथा तप से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे । उसके बाद भगवान गौतमस्वामी ने दूसरी बार बेले के पारणे के निमित्त प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया यावत् भिक्षार्थ गमन करते हुए पाटलिखण्ड नगर में दक्षिण दिशा के द्वार से प्रवेश किया तो वहाँ पर भी उन्होंने कंडू आदि रोगों से युक्त उसी पुरुष को देखा और वे भिक्षा लेकर वापिस आए । यावत् तप व संयम से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे । तदनन्तर भगवान गौतम तीसरी बार बेले के पारणे के निमित्त उसी नगर में पश्चिम दिशा के द्वार से प्रवेश करते हैं, तो वहाँ पर भी वे उसी पूर्ववर्णित पुरुष को देखते हैं ।

इसी प्रकार गौतम चौथी बार बेले के पारणे के लिए पाटलिखण्ड में उत्तरदिशा के द्वार से प्रवेश करते हैं । तब भी उन्होंने उसी पुरुष को देखा । उसे देखकर मन में यह संकल्प हुआ कि–अहो ! यह पुरुष पूर्वकृत् अशुभ कर्मों के कटु-विपाक को भोगता हुआ दुःखपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है यावत् वापिस आकर उन्होंने भगवान से कहा–'भगवन् ! मैंने बेले के पारणे के निमित्त यावत् पाटलिखण्ड नगर की ओर प्रस्थान किया और नगर के पूर्व दिशा के द्वार से प्रवेश किया तो मैंने एक पुरुष को देखा जो कण्डूरोग से आक्रान्त यावत् भिक्षावृत्ति से आजीविका कर रहा था । फिर दूसरी बार, तीसरी बार, यावत् जब चौथी बार में बेले के पारण के निमित्त पाटलिखण्ड में उत्तर दिग्द्वार से प्रविष्ट हुआ तो वहाँ पर भी कंडूरोग से ग्रस्त भिक्षावृत्ति करते हुए उस पुरुष को देखा । उसे देखकर मेरे मानस में यह विचार उत्पन्न हुआ कि अहो ! यह पुरुष पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का फल भुगत रहा है; इत्यादि । प्रभो ! यह पुरुष पूर्वभव में कौन था ? जो इस प्रकार भीषण रोगों से आक्रान्त हुआ कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहा है ? भगवान महावीर ने कहा–

हे गौतम ! उस काल और उस समय में इस जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष में विजयपुर नाम का ऋद्ध, स्तिमित व समृद्ध नगर था । उसमें कनकरथ राजा था । उस कनकरथ का धन्वन्तरि नाम का वैद्य था जो आयुर्वेद

के आठों अङ्गों का ज्ञाता था । आयुर्वेद के आठों अङ्गों का नाम इस प्रकार है–कौमारमृत्यु, शालाक्य, शाल्यहत्य, कायचिकित्सा, जांगुल, भूतविद्या, रसायन, वाजीकरण । वह धन्वन्तरि वैद्य शिवहस्त, शुभहस्त व लघुहस्त था।

वह धन्वन्तरि वैद्य विजयपुर नगर के महाराज कनकरथ के अन्तःपुर में निवास करने वाली रानियों को तथा अन्य बहुत से राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाहों को तथा इसी तरह अन्य बहुत से दुर्बल, ग्लान, रोगी, व्याधित या बाधित, रुग्ण व्यक्तियों को एवं सनाथों, अनाथों, श्रमणों-ब्राह्मणों, भिक्षुकों, कापालिकों, कार्पटिकों, अथवा भिखमंगों और आतुरों की चिकित्सा किया करता था । उनमें से कितने को मत्स्यमाँस खाने का, कछुओं के माँस का, ग्राह के माँस का, मगरों के माँस का, सुंसुमारों के माँस का, बकरा के माँस खाने का उपदेश दिया करता था । इसी प्रकार भेड़ों, गवयों, शूकरों, मृगों, शशकों, गौओं और महिषों का माँस खाने का भी उपदेश करता था । कितनों को तित्तरों के माँस का, बटेरों, लावकों, कबूतरों, कुक्कुटों, व मयूरों के माँस का उपदेश देता । इसी भाँति अन्य बहुत से जलचरों, स्थलचरों तथा खेचरों आदि के माँस का उपदेश करता था । यही नहीं, वह धन्वन्तरि वैद्य स्वयं भी उन अनेकविध मत्स्यमाँसों, मयूरमाँसों तथा अन्य बहुत से जलचर, स्थलचर व खेचर जीवों के माँसों से तथा मत्स्यरसों व मयूररसों से पकाये हुए, तले हुए, भूने हुए माँसों के साथ पाँच प्रकार की मदिराओं का आस्वादन व विस्वादन, परिभाजन एवं बार-बार उपभोग करता हुआ समय व्यतीत करता था ।

तदनन्तर वह धन्वन्तरि वैद्य इन्हीं पापकर्मों वाला इसी प्रकार की विद्या वाला और ऐसा ही आचरण बनाये हुए, अत्यधिक पापकर्मों का उपार्जन करके ३२ सौ वर्ष की परम आयु को भोगकर काल मास में काल करके छट्ठी नरकपृथ्वी में २२ सागरोपम की स्थिति वाले नारकियों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ ।

उस समय सागरदत्त की गङ्गदत्ता भार्या जातनिन्दुका थी । अत एव उसके बालक उत्पन्न होने के साथ ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे । एक बार मध्यरात्रि में कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ता से जागती उस गंगदत्ता सार्थवाही के मन में संकल्प उत्पन्न हुआ, मैं चिरकाल से सागरदत्त सार्थवाह के साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार-प्रधान कामभोगों का उपभोग करती आ रही हूँ परन्तु मैंने आज तक जीवित रहने वाले एक भी बालक अथवा बालिका को जन्म देने का सौभाग्य प्राप्त नहीं किया है । वे माताएं धन्य हैं, कृतपुण्य हैं, उन्हीं का वैभव सार्थक है और उन्होंने ही मनुष्य सम्बन्धी जन्म और जीवन को सफल किया है, जिनके स्तनगत दूध में लुब्ध, मधुर भाषण से युक्त, व्यक्त तथा स्खलित-तुतलाते वचन वाले, स्तनमूल प्रदेश से कांख तक अभिसरणशील नितान्त सरल, कमल के समान कोमल सुकुमार हाथों से पकड़कर गोद में स्थापित किये जाने वाले व पुनः पुनः सुमधुर कोमल-मंजुल वचनों को बोलने वाले अपने ही कुक्षि-उदर से उत्पन्न हुए बालक या बालिकाएं हैं । उन माताओं को मैं धन्य मानती हूँ । उनका जन्म भी सफल और जीवन भी सफल है ।

मैं अधन्या हूँ, पुण्यहीन हूँ, मैंने पुण्योपार्जन नहीं किया है, क्योंकि, मैं इन बालसुलभ चेष्टाओं वाले एक सन्तान को भी उपलब्ध न कर सकी । अब मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि मैं प्रातःकाल, सूर्य उदय होते ही, सागरदत्त सार्थवाह से पूछकर विविध प्रकार के पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलङ्कार लेकर बहुत से ज्ञातिजनों, मित्रों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धीजनों और परिजनों की महिलाओं के साथ पाटलिखण्ड नगर से नीकलकर बाहर उद्यान में, जहाँ उम्बरदत्त यक्ष का यक्षायतन है, वहाँ जाकर उम्बरदत्त यक्ष की महार्ह पुष्पार्चना करके और उसके चरणों में नतमस्तक हो, इस प्रकार प्रार्थनापूर्ण याचना करूँ–'हे देवानुप्रिय ! यदि मैं अब जीवित रहने वाले बालिका या बालक को जन्म दूँ तो मैं तुम्हारे याग, दान, भाग, व देव भंडार में वृद्धि करूँगी ।' इस प्रकार ईप्सित वस्तु की प्रार्थना के लिए उसने निश्चय किया । प्रातःकाल सूर्योदय होने के साथ ही जहाँ पर सागरदत्त सार्थवाह था, वहाँ पर आकर सागरदत्त सार्थवाह से कहने लगी–'हे स्वामिन् ! मैंने आपके साथ मनुष्य सम्बन्धी सांसारिक सुखों का पर्याप्त उपभोग करते हुए आजतक एक भी जीवित रहने वाले बालक या बालिका को प्राप्त नहीं किया । अतः मैं चाहती हूँ किय दि आप आज्ञा दे तो मैं अपने मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धीजनों और परिजनों की महिलाओं के साथ पाटलिखण्ड नगर से बाहर उद्यान में उम्बरदत्त यक्ष की महार्ह पुष्पार्चना कर पुत्रोपलब्धि के

लिए मनौती मनाऊं ।' 'भद्रे ! मेरी भी यही ईच्छा है कि किसी प्रकार तुम्हारे जीवित रहने वाले पुत्र या पुत्री उत्पन्न हों ।' उसने गंगदत्ता के उक्त प्रस्ताव का समर्थन किया ।

तब सागरदत्त सार्थवाह की आज्ञा प्राप्त कर वह गंगदत्ता भार्या विविध प्रकार के पुष्प, वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकार तथा विविध प्रकार की पूजा की सामग्री लेकर, मित्र, ज्ञाति, स्वजन, सम्बन्धी एवं परिजनों की महिलाओं के साथ अपने घर से नीकली और पाटलिखण्ड नगर के मध्य से होती हुई एक पुष्करिणी के समीप पहुँची । पुष्करिणी में प्रवेश किया । वहाँ जलमज्जन एवं जलक्रीड़ा कर कौतुक तथा मंगल प्रायश्चित्त को करके गीली साड़ी पहने हुए वह पुष्करिणी से बाहर आई । पुष्पादि पूजासामग्री को लेकर उम्बरदत्त यक्ष के यक्षायतन के पास पहुँची । यक्ष को नमस्कार किया । फिर लोमहस्तक लेकर उसके द्वारा यक्षप्रतिमा का प्रमार्जन किया । जलधारा से अभिषेक किया । कषायरंग वाले सुगन्धित एवं सुकोमल वस्त्र से उसके अंगों को पोंछा । श्वेत वस्त्र पहनाया, महार्ह, पुष्पारोहण, वस्त्रारोहण, गन्धारोहण, माल्यारोहण और चूर्णारोहण किया । धूप जलाकर यक्ष के सन्मुख घुटने टेककर पाँव में पड़कर इस प्रकार निवेदन किया–'जो मैं एक जीवित बालक या बालिका को जन्म दूँ तो याग, दान एवं भण्डार की वृद्धि करूँगी ।' इस प्रकार-यावत् याचना करती है फिर जिधर से आयी थी उधर लौट जाती है ।

तदनन्तर वह धन्वन्तरि वैद्य का जीव नरक से नीकलकर इसी पाटलिखण्ड नगर में गंगदत्ता भार्या की कुक्षि में पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ । लगभग तीन मास पूर्ण हो जाने पर गंगदत्ता भार्या को यह दोहद उत्पन्न हुआ । 'धन्य हैं वे माताएं यावत् उन्होंने अपना जन्म और जीवन सफल किया है जो विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम और सुरा आदि मदिराओं को तैयार करवाती हैं और अनेक मित्र, ज्ञाति आदि की महिलाओं से परिवृत्त होकर पाटलिखण्ड नगर के मध्य में से नीकलकर पुष्करिणी पर जाती हैं । जल स्नान व अशुभ-स्वप्न आदि के फल को विफल करने के लिए मस्तक पर तिलक व अन्य माङ्गलिक कार्य करके उस विपुल अशनादिक का मित्र, ज्ञातिजन आदि की महिलाओं के साथ आस्वादनादि करती हुई दोहद को पूर्ण करती हैं ।' इस तरह विचार करके प्रातःकाल जाज्वल्यमान सूर्य के उदित हो जाने पर जहाँ सागरदत्त सार्थवाह था, वहाँ पर आकर सागरदत्त सार्थवाह से कहती है–'स्वामिन् ! वे माताएं धन्य हैं जो यावत् उक्त प्रकार से अपना दोहद पूर्ण करती हैं । मैं भी अपने दोहद को पूर्ण करना चाहती हूँ ।' सागरदत्त सार्थवाह भी दोहदपूर्ति के लिए गंगदत्ता भार्या को आज्ञा दे देता है ।

सागरदत्त सार्थवाह से आज्ञा प्राप्त कर गंगदत्ता पर्याप्त मात्रा में अशनादिक चतुर्विध आहार तैयार करवाती है और उपस्कृत आहार एवं छह प्रकार के मदिरादि पदार्थ तथा बहुत सी पुष्पादि पूजासामग्री को लेकर मित्र, ज्ञातिजन आदि की तथा अन्य महिलाओं को साथ लेकर यावत् स्नान तथा अशुभ स्वप्नादि के फल को विनष्ट करने के लिए मस्तक पर तिलक व अन्य माङ्गलिक अनुष्ठान करके उम्बरदत्त यक्ष के आयतन में आ जाती है । वहाँ पहले की ही तरह पूजा करती व धूप जलाती है । तदनन्तर पुष्करिणी-वावड़ी पर आ जाती है, वहाँ पर साथ में आने वाली मित्र, ज्ञाति आदि महिलाएं गंगदत्ता को सर्व अलङ्कारों से विभूषित करती हैं, तत्पश्चात् उन मित्रादि महिलाओं तथा अन्य महिलाओं के साथ उस विपुल अशनादिक तथा षड्विध सुरा आदि का आस्वादन करती हुई गंगदत्ता अपने दोहद–मनोरथ को परिपूर्ण करती है । इस तरह दोहद को पूर्ण कर वह वापिस अपने घर आ जाती है । तदनन्तर सम्पूर्णदोहदा, सन्मानितदोहदा, विनीतदोहदा, व्युच्छिन्नदोहदा, सम्पन्नदोहदा वह गंगदत्ता उस गर्भ को सुखपूर्वक धारण करती है ।

तत्पश्चात् नौ मास परिपूर्ण होने पर उस गंगदत्ता ने एक बालक को जन्म दिया । माता-पिता ने स्थिति-पतिता मनाया । फिर उसका नामकरण किया, 'यह बालक क्योंकि उम्बरदत्त यक्ष की मान्यता मानने से जन्मा है, अतः इसका नाम भी 'उम्बरदत्त' ही हो । तदनन्तर उम्बरदत्त बालक पाँच धायमाताओं द्वारा गृहीत होकर वृद्धि को प्राप्त करने लगा । तदनन्तर सागरदत्त सार्थवाह भी विजयमित्र की ही तरह कालधर्म को प्राप्त हुआ । गंगदत्ता भी कालधर्म को प्राप्त हुई । इधर उम्बरदत्त को भी उज्झितकुमार की तरह राजपुरुषों ने घर से नीकाल दिया । उसका

घर किसी अन्य को सौंप दिया ।

तत्पश्चात् किसी समय उम्बरदत्त के शरीर में एक ही साथ सोलह प्रकार के रोगातङ्क उत्पन्न हो गये, जैसे कि–श्वास, कास यावत् कोढ़ आदि । इन सोलह प्रकार के रोगातङ्कों से अभिभूत हुआ उम्बरदत्त खुजली यावत् हाथ आदि के सड़ जाने से दुःखपूर्ण जीवन बिता रहा हे । हे गौतम ! इस प्रकार उम्बरदत्त बालक अपने पूर्वकृत् अशुभ कर्मों का यह भयङ्कर फल भोगता हुआ इस तरह समय व्यतीत कर रहा है । भगवन् ! यह उम्बरदत्त बालक मृत्यु के समय में काल करके कहाँ जाएगा ? और कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ! उम्बरदत्त बालक ७२ वर्ष का परम आयुष्य भोगकर कालमास में काल करके रत्नप्रभा नरक में नारक रूप से उत्पन्न होगा । वह पूर्ववत् संसार भ्रमण करता हुआ पृथिवी आदि सभी कायों में लाखों बार उत्पन्न होगा । वहाँ से नीकलकर हस्तिनापुर में कुर्कुट–के रूप में उत्पन्न होगा । वहाँ जन्म लेने के साथ ही गोष्ठिकों द्वारा वध को प्राप्त होगा । पुनः हस्तिनापुर में ही एक श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न होगा । वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त करेगा । वहाँ से सौधर्म कल्प में जन्म लेगा । वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होगा । वहाँ अनगार धर्म को प्राप्त कर यथाविधि संयम की आराधना कर, कर्मों का क्षय करके सिद्धि को प्राप्त होगा–निक्षेप पूर्ववत् ।

अध्ययन-७-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-८ – शौर्यदत्त

सूत्र - ३२

अष्टम अध्ययन का उत्क्षेप पूर्ववत् । हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में शौरिकपुर नाम का नगर था । वहाँ 'शौरिकावतंसक' नाम का उद्यान था । शौरिक यक्ष था । शौरिकदत्त राजा था । उस शौरिकपुर नगर के बाहर ईशान को में एक मच्छीमारों का पाटक था । वहाँ समुद्रदत्त नामक मच्छीमार था । वह महा-अधर्मी यावत् दुष्प्रत्या-नन्द था । उसकी समुद्रदत्ता नामकी अन्यून व निर्दोष पाँचों इन्द्रियों परिपूर्ण शरीर वाली भार्या थी । उस समुद्रदत्त का पुत्र और समुद्रदत्ता भार्या का आत्मज शौरिकदत्त नामक सर्वाङ्गसम्पन्न सुन्दर बालक था ।

उस काल व उस समयमें भगवान महावीर पधारे यावत् परीषद् व राजा धर्मकथा सूनकर वापिस चले गए उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य गौतमस्वामी यावत् षष्ठभक्त के पारणे के अवसर पर शौरिकपुर नगरमें उच्च, नीच तथा मध्यममें भ्रमण करते हुए यथेष्ठ आहार लेकर शौरिकपुर नगर से बाहर नीकलते हैं । उस मच्छीमार मुहल्ले के पास से जाते हुए उन्होंने विशाल जनसमुदाय के बीच एक सूखे, बुभुक्षित, मांसरहित व अतिकृश होने के कारण जिसके चमड़े हड्डियों से चिपटे हुए हैं, उठते-बैठते वक्त जिसकी हड्डियाँ कड़कड़ कर रही हैं, जो नीला वस्त्र पहने हुए हैं एवं गले में मत्स्य-कण्टक लगा होने के कारण कष्टात्मक, करुणाजनक एवं दीनतापूर्ण आक्रन्दन कर रहा है, ऐसे पुरुष को देखा । वह खून के कुल्लों, पीव के कुल्लों और कीड़ों के कुल्लों का बारंबार वमन कर रहा था । उसे देख कर गौतमस्वामी के मन में संकल्प उत्पन्न हुआ–अहो! यह पुरुष पूर्वकृत् यावत् अशुभकर्मों के फलस्वरूप नरकतुल्य वेदना अनुभवता हुआ समय बिता रहा है! इस तरह विचार कर श्रमण भगवान महावीर पास पहुँचे यावत् भगवान से उसका पूर्वभव पृच्छा । यावत् भगवानने कहा–

हे गौतम ! उस काल उस समय में इसी जम्बूद्वीप अन्तर्गत भारतवर्ष में नन्दिपुर नगर था । वहाँ मित्र राजा था । उस मित्रराजा के श्रीयक नामक रसोईया था । महाअधर्मी यावत् दुष्प्रत्यानन्द था । उसके पैसे और भोजनादि रूप से वेतन ग्रहण करनेवाले अनेक मच्छीमार, वागुरिक, शाकुनिक, नौकर पुरुष थे; जो श्लक्ष्ण-मत्स्यों यावत् पताकातिपताकों तथा अजों यावत् महिषों एवं तित्तिरों यावत् मयूरों का वध करके श्रीद रसोईये को देते थे । अन्य बहुत से तित्तिर यावत् मयूर आदि पक्षी उसके यहाँ पिंजरों में बन्द किये हुए रहते थे । श्रीद रसोईया के अन्य अनेक वेतन लेकर काम करनेवाले पुरुष अनेक जीते हुए तित्तरों यावत् मयूरों को पक्ष रहित करके लाकर दिया करते थे ।

तदनन्तर वह श्रीद नामक रसोईया अनेक जलचर, स्थलचर व खेचर जीवों के मांसों को लेकर सूक्ष्म, वृत्त, दीर्घ, तथा ह्रस्व खण्ड किया करता था । उन खण्डों में से कईं एक को बर्फ से पकाता था, कईं एक को अलग रख देता जिससे वे स्वतः पक जाते थे, कईं एक को धूप की गर्मी से व कईं एक को हवा के द्वारा पकाता था । कईं एक को कृष्ण वर्ण वाले तो कईं एक को हिंगुल वर्ण वाले किया करता था । वह उन खण्डों को तक्र, आमलक, द्राक्षारस, कपित्थ तथा अनार के रस से भी संस्कारित करता था एवं मत्स्यरसों से भी भावित किया करता था । तदनन्तर उन मांसखण्डों में से कईं एक को तेल से तलता, कईं एक को आग पर भूनता तथा कईं एक को सूल में पिरोकर पकाता था । इसी प्रकार मत्स्यमांसों, मृगमांसों, तित्तिरमांसों, यावत् मयूरमांसों के रसों को तथा अन्य बहुत से हरे शाकों को तैयार करता था, तैयार करके राजा मित्र के भोजनमंडप में ले जाकर भोजन के समय उन्हें प्रस्तुत करता था । श्रीद रसोईया स्वयं भी अनेक जलचर, स्थलचर एवं खेचर जीवों के मांसों, रसों व हरे शाकों के साथ, जो कि शूलपक्व होते, तले हुए होते, भूने हुए होते थे, छह प्रकार की सुरा आदि का आस्वादनादि करता हुआ काल यापन कर रहा था ।

तदनन्तर इन्हीं कर्मों को करने वाला, इन्हीं कर्मों में प्रधानता रखने वाला, इन्हीं का विज्ञान रखने वाला, तथा इन्हीं पापों को सर्वोत्तम आचरण मानने वाला वह श्रीद रसोईया अत्यधिक पापकर्मों का उपार्जन कर ३३०० वर्ष की परम आयु को भोग कर कालमास में काल करके छट्ठे नरक में उत्पन्न हुआ । उस समय वह समुद्रदत्ता भार्या–मृतवत्सा थी । उसके बालक जन्म लेने के साथ ही मर जाया करते थे । उसने गंगदत्ता की ही तरह विचार

किया, पति की आज्ञा लेकर, मान्यता मनाई और गर्भवती हुई । दोहद की पूर्ति पर समुद्रदत्त बालक को जन्म दिया। 'शौरक यक्ष की मनौती के कारण हमें यह बालक उपलब्ध हुआ है' ऐसा कहकर उसका नाम 'शौरिकदत्त' रखा । तदनन्तर पाँच धायमाताओं से परिगृहीत, बाल्यावस्था को त्यागकर विज्ञान की परिपक्व अवस्था से सम्पन्न वह शौरिकदत्त युवावस्था को प्राप्त हुआ । तदनन्तर समुद्रदत्त कालधर्म को प्राप्त हो गया । रुदन, आक्रन्दन व विलाप करते हुए शौरिकदत्त बालक ने अनेक मित्र-ज्ञाति-स्वजन परिजनों के साथ समुद्रदत्त का निस्सरण किया, दाहकर्म व अन्य लौकिक क्रियाएं की । तत्पश्चात् किसी समय वह स्वयं ही मच्छीमारों का मुखिया बन कर रहने लगा । अब वह मच्छीमार हो गया जो महा अधर्मी यावत् दुष्प्रत्यानन्द था ।

तदनन्तर शौरिकदत्त मच्छीमारने पैसे और भोजनादि का वेतन लेकर काम करनेवाले अनेक वेतनभोगी रखे, जो छोटी नौकाओं द्वारा यमुना महानदी में प्रवेश करते, ह्रदगलन, ह्रदमलन, ह्रदमर्दन, ह्रदमन्थन, ह्रदवहन, ह्रदप्रवहन से, तथा प्रपंचुल, प्रपंपुल, मत्स्यपुच्छ, जृम्भा, त्रिसरा, भिसरा, विसरा, द्विसरा, हिल्लिरि, झिल्लिरि, लल्लिरि, जाल, गल, कूटपाश, वल्कबन्ध, सूत्रबन्ध और बालबन्ध साधनों के द्वारा कोमल मत्स्यों यावत् पताका-तिपताक मत्स्य-विशेषों को पकड़ते, उनसे नौकाएं भरते हैं । नदी के किनारे पर लाते हैं, बाहर एक स्थल पर ढेर लगा देते हैं । तत्पश्चात् उनको वहाँ धूप में सूखने के लिए रख देते हैं । इसी प्रकार उसके अन्य वेतनभोगी पुरुष धूप से सूखे हुए उन मत्स्यों के मांसों को शूलाप्रोत कर पकाते, तलते और भूनते तथा उन्हें राजमार्गों में विक्रयार्थ रखकर आजीविका समय व्यतीत कर रहे थे । शौरिकदत्त स्वयं भी उन शूलाप्रोत किये हुए, भूने हुए और तले हुए मत्स्यमांसों के साथ विविध प्रकार की सुरा सीधु आदि मदिराओं का सेवन करता हुआ जीवन यापन कर रहा था ।

तदनन्तर किसी अन्य समय शूल द्वारा पकाये गये, तले गए व भूने गए मत्स्यमांसों का आहार करते समय उस शौरिकदत्त मच्छीमार के गले में मच्छी का काँटा फँस गया । इसके कारण वह महती असाध्य वेदना का अनुभव करने लगा । अत्यन्त दुःखी हुए शौरिक ने अपने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–'हे देवानुप्रियो ! शौरिकपुर नगर के त्रिकोण मार्गों व यावत् सामान्य मार्गों पर जाकर ऊंचे शब्दों से इस प्रकार घोषणा करो कि–हे देवानुप्रियो ! शौरिकदत्त के गले में मत्स्य का काँटा फँस गया है, यदि कोई वैद्य या वैद्यपुत्र जानकार या जानकार का पुत्र, चिकित्सक या चिकित्सक-पुत्र उस मत्स्य-कंटक को नीकाल देगा तो, शौरिकदत्त उसे बहुत सा धन देगा । कौटुम्बिक पुरुषों-अनुचरों ने उसकी आज्ञानुसार सारे नगर में उद्घोषणा कर दी ।

उसके बाद बहुत से वैद्य, वैद्यपुत्र आदि उपर्युक्त उद्घोषणा को सूनकर शौरिकदत्त का जहाँ घर था और शौरिक मच्छीमार जहाँ था वहाँ पर आए, आकर बहुत सी औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी तथा पारिणामिकी बुद्धियों से सम्यक् परिणमन करते वमनो, छर्दनों अवपीड़नों कवलग्राहों शल्योद्धारों विशल्य-करणों आदि उपचारों से शौरिकदत्त के गले के काँटों को नीकालने का तथा पीव को बन्द करने का बहुत प्रयत्न करते हैं परन्तु उसमें वे सफल न हो सके । तब श्रान्त, तान्त, परितान्त होकर वापिस अपने अपने स्थान पर चले गये । इस तरह वैद्यों के इलाज से निराश शौरिकदत्त उस महती वेदना को भोगता हुआ सूखकर यावत् अस्थिपिञ्जर हो गया । वह दुःख पूर्वक समय बीता रहा है । हे गौतम ! वह शौरिकदत्त अपने पूर्वकृत् अत्यन्त अशुभ कर्मों का फल भोग रहा है ।

अहो भगवन् ! शौरिकदत्त मच्छीमार यहाँ से कालमास में काल करके कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ? हे गौतम ७० वर्ष की परम आयु को भोगकर कालमास में काल करके रत्नप्रभा नरक में उत्पन्न होगा । उसका अवशिष्ट संसार-भ्रमण पूर्ववत् ही समझना यावत् पृथ्वीकाय आदि में लाखों बार उत्पन्न होगा । वहाँ से नीकलकर हस्तिनापुर में मत्स्य होगा । वहाँ मच्छीमारों के द्वारा वध को प्राप्त होकर वहीं हस्तिनापुर में एक श्रेष्ठिकुल में जन्म लेगा । वहाँ सम्यक्त्व की उसे प्राप्ति होगी । वहाँ से मरकर सौधर्म देवलोक में देव होगा । वहाँ से चय करके महा-विदेह क्षेत्र में जन्मेगा, चारित्र ग्रहण कर उसके सम्यक् आराधन से सिद्ध पद को प्राप्त करेगा । निक्षेप पूर्ववत् ।

अध्ययन-८-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-९ – देवदत्ता

सूत्र - ३३

यदि भगवन् ! यावत् नवम अध्ययन का उत्क्षेप जान लेना चाहिए । जम्बू ! उस काल तथा उस समय में रोहीतक नाम का नगर था । वह ऋद्ध, स्तिमित तथा समृद्ध था । पृथिवी-अवतंसक नामक उद्यान था । उसमें धारण नामक यक्ष का यक्षायतन था । वहाँ वैश्रमणदत्त नाम का राजा था । श्रीदेवी नामक रानी थी । युवराज पद से अलंकृत पुष्पनंदी कुमार था । उस रोहीतक नगर में दत्त गाथापति रहता था । वह बड़ा धनी यावत् सम्माननीय था। उसकी कृष्णश्री नामकी भार्या थी । उस दत्त गाथापति की पुत्री तथा कृष्णश्री की आत्मजा देवदत्ता नाम की बालिका थी; जो अन्यून एवं निर्दोष इन्द्रियों से युक्त सुन्दर शरीरवाली थी ।

उस काल उस समय में वहाँ श्रमण भगवान महावीर पधारे यावत् उनकी धर्मदेशना सूनकर राजा व परिषद् वापिस चले गये । उस काल, उस समय भगवान के ज्येष्ठ शिष्य गौतमस्वामी बेले के पारणे के निमित्त भिक्षार्थ नगर में गये यावत् राजमार्ग में पधारे । वहाँ पर वे हस्तियों, अश्वों और पुरुषों को देखते हैं, और उन सबके बीच उन्होंने अवकोटक बन्धन से बंधी हुई, कटे हुए कर्ण तथा नाक वाली यावत् ऐसी सूली पर भेदी जाने वाली एक स्त्री को देखा और देखकर उनके मन में यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि यह नरकतुल्य वेदना भोग रही है । यावत् पूर्ववत् भिक्षा लेकर नगर से नीकले और भगवान के पास आकर इस प्रकार निवेदन करने लगे कि–भदन्त ! यह स्त्री पूर्वभव में कौन थी ?

हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप अन्तर्गत् भारतवर्ष में सुप्रतिष्ठ नाम का एक ऋद्ध, स्तिमित व समृद्ध नगर था । वहाँ पर महासेन राजा थे । उसके अन्तःपुर में धारिणी आदि एक हजार रानियाँ थीं । महाराज महासेन का पुत्र और महारानी धारिणी का आत्मज सिंहसेन नामक राजकुमार था जो अन्यून पाँचों इन्द्रियों वाला व युवराजपद से अलंकृत था । तदनन्तर सिंहसेन राजकुमार के माता-पिता ने एक बार किस समय पाँचसौ सुविशाल प्रासादावतंसक बनवाए । किसी अन्य समय उन्होंने सिंहसेन राजकुमार का श्यामा आदि ५०० राजकन्याओं के साथ एक दिनमें विवाह कर दिया । पाँच सौ-पाँच सौ वस्तुओं का प्रीतिदान दिया । राजकुमार सिंहसेन श्यामाप्रमुख ५०० राजकन्याओं के साथ प्रासादोंमें रमण करता हुआ सानन्द समय व्यतीत करने लगा

तत्पश्चात् किसी समय राजा महासेन कालधर्म को प्राप्त हुए । राजकुमार सिंहसेन ने निःसरण किया । तत्पश्चात् वह राजा बन गया । तदनन्तर महाराजा सिंहसेन श्यामादेवी में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित व अध्युपपन्न होकर अन्य देवियों का न आदर करता है और न उनका ध्यान ही रखता है । इसके विपरीत उनका अनादर व विस्मरण करके सानंद समय यापन कर रहा है । तत्पश्चात् उन एक कम पाँच सौ देवियों की एक कम पाँच सौ माताओं को जब इस वृत्तान्त का पता लगा कि–'राजा, सिंहसेन श्यामादेवी में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित व अध्युपपन्न होकर हमारी कन्याओं का न तो आदर करता और न ध्यान ही रखता है, अपितु उनका अनादर व विस्मरण करता है; तब उन्होंने मिलकर निश्चय किया कि हमारे लिये यही उचित है कि हम श्यामादेवी को अग्नि के प्रयोग से, विष के प्रयोग से अथवा शस्त्र के प्रयोग से जीवन रहित कर डालें । इस तरह विचार करने के अनंतर अन्तर, छिद्र की प्रतीक्षा करती हुई समय बिताने लगीं ।

इधर श्यामादेवी को भी इस षड्यन्त्र का पता लग गया । जब उसे यह वृत्तान्त विदित हुआ तब वह इस प्रकार विचारने लगी–मेरी एक कम पाँच सौ सपत्नीयों की एक कम पाँच सौ माताएं–'महाराजा सिंहसेन श्यामामें अत्यन्त आसक्त होकर हमारी पुत्रियों का आदर नहीं करते, यह जानकर एकत्रित हुई और 'अग्नि, शस्त्र या विष के प्रयोग से श्यामा के जीवन का अन्त कर देना ही हमारे लिए श्रेष्ठ है' ऐसा विचार कर, वे अवसर की खोज में है । जब ऐसा है तो न जाने वे किस कुमौत से मुझे मारें ? ऐसा विचार कर वह श्यामा भीत, त्रस्त, उद्विग्न व भयभीत हो उठी और जहाँ कोपभवन था वहाँ आई । आकर मानसिक संकल्पों के विफल रहने से मनमें निराश होकर आर्त्त ध्यान करने लगी । तदनन्तर सिंहसेनराजा इस वृत्तान्त से अवगत हुआ और जहाँ कोपगृह था और जहाँ श्यामादेवी

थी वहाँ पर आया । जिसके मानसिक संकल्प विफल हो गए हैं, जो निराश व चिन्तित हो रही है, ऐसी निस्तेज श्यामादेवी को देखकर कहा–हे देवानुप्रिये ! तू क्यों इस तरह अपहृतमनःसंकल्पा होकर चिन्तित हो रही है ?

सिंहसेन राजा के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर दूध के उफान के समान क्रुद्ध हुई अर्थात् क्रोधयुक्त प्रबल वचनों से सिंह राजा के प्रति इस प्रकार बोली–हे स्वामिन् ! मेरी एक कम पाँच सौ सपत्नियों की एक कम पाँच सौ मातें इस वृत्तान्त को जानकर इकट्ठी होकर एक दूसरे को इस प्रकार कहने लगीं–महाराज सिंहसेन श्यामादेवी में अत्यन्त आसक्त, गृद्ध, ग्रथित व अध्युपपन्न हुए हमारी कन्याओं का आदर सत्कार नहीं करते हैं । उनका ध्यान भी नहीं रखते हैं; प्रत्युत उनका अनादर व विस्मरण करते हुए समय-यापन कर हे हैं; इसलिए हमारे लिये यही समुचित है कि अग्नि, विष या किसी शस्त्र के प्रयोग से श्यामा का अन्त कर डालें । तदनुसार वे मेरे अन्तर, छिद्र और विवर की प्रतीक्षा करती हुई अवसर देख रही हैं । न जाने मुझे किस कुमौत से मारे ! इस कारण भयाक्रान्त हुई मैं कोपभवन में आकर आर्त्तध्यान कर रही हूँ ।

तदनन्तर महाराजा सिंहसेन ने श्यामादेवी से कहा–हे देवानुप्रिये ! तू इस प्रकार अपहृत मन वाली होकर आर्तध्यान मत कर । निश्चय ही मैं ऐसा उपाय करूँगा कि तुम्हारे शरीर को कहीं से भी किसी प्रकार की आबाधा तथा प्रबाधा न होने पाएगी । इस प्रकार श्यामा देवी को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोहर वचनों से आश्वासन देता है और वहाँ से नीकल जाता है । नीकलकर कौटुम्बिक-अनुचर पुरषों को बुलाता है और कहता है–तुम लोग जाओ और जाकर सुप्रतिष्ठित नगर से बाहर पश्चिम दिशा के विभाग में एक बड़ी कूटाकारशाला बनाओ जो सैकड़ों स्तम्भों से युक्त हो, प्रासादीय, अभिरूप, प्रतिरूप तथा दर्शनीय हो–वे कौटुम्बिक पुरुष दोनों हाथ जोड़कर सिर पर दसों नख वाली अञ्जलि रख कर इस राजाज्ञा को शिरोधार्य करते हुए चले जाते हैं । जाकर सुप्रतिष्ठित नगर के बाहर पश्चिम दिक् विभाग में एक महती व अनेक स्तम्भों वाली प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप कूटा-कारशाला तैयार करवा कर महाराज सिंहसेन की आज्ञा प्रत्यर्पण करते हैं–

तदनन्तर राजा सिंहसेन किसी समय एक कम पाँच सौ देवियों की एक कम पाँच सौ माताओं को आमन्त्रित करता है । सिंहसेन राजा का आमंत्रण पाकर वे एक कम पाँच सौ देवियों की एक कम पाँच सौ माताएं सर्वप्रकार से वस्त्रों एवं आभूषणों से सुसज्जित हो अपने-अपने वैभव के अनुसार सुप्रतिष्ठित नगर में राजा सिंहसेन जहाँ थे, वहाँ आ जाती हैं । सिंहसेन राजा भी उन एक कम पाँच सौ देवियों की एक कम पाँच सौ माताओं को निवास के लिए कूटाकार-शाला में स्थान दे देता है । तदनन्तर सिंहसेना राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा –'देवानुप्रियो ! तुम जाओ और विपुल अशनादिक ले जाओ तथा अनेकविध पुष्पों, वस्त्रों, गन्धों, मालाओं और अलंकारों को कूटाकार शाला में पहुँचाओ । कौटुम्बिक पुरुष भी राजा की आज्ञा के अनुसार सभी सामग्री पहुँचा देते हैं । तदनन्तर सर्व-प्रकार के अलंकारों से विभूषित उन एक कम पाँच सौ देवियों की एक कम पाँच सौ माताओं ने उस विपुल अशनादिक और सुरादिक सामग्री का आस्वादन किया और गान्धर्व तथा नाटक नर्तकों से उपगीय-मान-प्रशस्यमान होती हुई सानन्द विचरने लगीं ।

तत्पश्चात् सिंहसेन राजा अर्द्धरात्रि के समय अनेक पुरुषों के साथ, उनसे घिरा हुआ, जहाँ कूटाकारशाला थी वहाँ पर आया । आकर उसने कूटाकारशाला के सभी दरवाजे बन्द करवा दिए । कूटाकारशाला को चारों तरफ से आग लगवा दी । तदनन्तर राजा सिंहसेन के द्वारा आदीप्त की गई, जलाई गई, त्राण व शरण से रहित हुई एक कम पाँच सौ रानियों की एक कम पाँच सौ माताएं रुदन, क्रन्दन व विलाप करती हुई कालधर्म को प्राप्त हो गई । इस प्रकार के कर्म करने वाला, ऐसी विद्या-बुद्धि वाला, ऐसा आचरण करने वाला सिंहसेन राजा अत्यधिक पाप-कर्मों का उपार्जन करके ३४-सौ वर्ष की परम आयु भोगकर काल करके उत्कृष्ट २२ सागरोपम की स्थिति वाली छट्ठी नरकभूमि में नारक रूप से उत्पन्न हुआ । वही सिंहसेन राजा का जीव स्थिति के समाप्त होने पर वहाँ से नीकलकर इसी रोहीतक नगर में दत्त सार्थवाह की कृष्णश्री भार्या की कुक्षि में बालिका के रूप में उत्पन्न हुआ ।

तब उस कृष्णश्री भार्या ने नौ मास परिपूर्ण होने पर एक कन्या को जन्म दिया । वह अन्यन्त कोमल हाथ-

पैरों वाली तथा अत्यन्त रूपवती थी । तत्पश्चात् उस कन्या के मातापिता न बारहवे दिन बहुत-सा अशनादिक तैयार करवाया यावत् मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धीजन तथा परिजनों को निमन्त्रित करके एवं भोजनादि से निवृत्त हो लेने पर कन्या का नामकरण संस्कार करते हुए कहा–हमारी इस कन्या का नाम देवदत्ता रखा जाता है । तदनन्तर वह देवदत्ता पाँच धायमाताओं के संरक्षण में वृद्धि को प्राप्त होने लगी । वह देवदत्ता बाल्यावस्था से मुक्त होकर यावत् यौवन, रूप व लावण्य से अत्यन्त उत्तम व उत्कृष्ट शरीर वाली हो गई । एक बार वह देवदत्ता स्नान करके यावत् समस्त आभूषणों से विभूषित होकर बहुत सी कुब्जा आदि दासियों के साथ अपने मकान के ऊपर सोने की गेंद के साथ क्रीड़ा करती हुई विहरण कर रही थी ।

इधर स्नानादि से निवृत्त यावत् सर्वालङ्कारविभूषित राजा वैश्रमणदत्त अश्व पर आरोहण करता है और बहुत से पुरुषों के साथ परिवृत अश्वक्रीड़ा के लिए जाता हुआ दत्त गाथापति के घर से कुछ पास से नीकलता है । तदनन्तर वह वैश्रमणदत्त राजा देवदत्ता कन्या को ऊपर सोने की गेंद से खेलती हुई देखता है और देखकर देवदत्ता दारिका के रूप, यौवन व लावण्य से विस्मय को प्राप्त होता है । कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहता है–'हे देवानुप्रियो ! यह बालिका किसकी है ? और इसका क्या नाम है ?' तब वे कौटुम्बिक पुरुष हाथ जोड़कर यावत् कहने लगे–'स्वामिन् ! यह कन्या दत्त गाथापति की पुत्री और कृष्णश्री की आत्मजा है जो रूप, यौवन तथा लावण्य-कान्ति से उत्तम तथा उत्कृष्ट शरीर वाली है ।

तदनन्तर राजा वैश्रमणदत्त अश्ववाहनिका से वापिस आकर अपने आभ्यन्तर स्थानीय को बुलाकर उनको इस प्रकार कहता है–देवानुप्रियो ! तुम जाओ और जाकर सार्थवाह दत्त की पुत्री और कृष्णश्री भार्या की आत्मजा देवदत्ता नाम की कन्या की युवराज पुष्पनन्दी के लिए भार्या रूप में माँग करो । यदि वह राज्य के बदले भी प्राप्त की जा सके तो भी प्राप्त करने के योग्य है । तदनन्तर वे अभ्यंतर-स्थानीय पुरुष राजा वैश्रमण की इस आज्ञा को सम्मानपूर्वक स्वीकार कर, हर्ष को प्राप्त हो यावत् स्नानादि क्रिया करके तथा राजसभा में प्रवेश करने योग्य उत्तम वस्त्र पहनकर जहाँ दत्त सार्थवाह का घर था, वहाँ आए । दत्त सार्थवाह भी उन्हें आता देखकर बड़ी प्रसन्नता के साथ आसन से उठकर उनके सन्मान के लिए सात-आठ कदम उनके सामने अगवानी करने गया । उनका स्वागत कर आसन पर बैठने की प्रार्थना की । तदनन्तर आश्वस्त, विश्वस्त, को उपलब्ध हुए एवं सुखपूर्वक उत्तम आसनों पर अवस्थित हुए । इन आने वाले राजपुरुषों से दत्त ने इस प्रकार कहा–देवानुप्रियो ! आज्ञा दीजिए, आपके शुभागमन का प्रयोजन क्या है ?

दत्त सार्थवाह के इस तरह पूछने पर आगन्तुक राजपुरुषों ने कहा–'हे देवानुप्रिय ! हम आपकी पुत्री और कृष्णश्री की आत्मजा देवदत्ता नाम की कन्या की युवराज पुष्पनन्दी के लिए भार्या रूप से मंगनी करने आए हैं । यदि हमारी माँग आपको युक्त, अवसरप्राप्त, श्लाघनीय लगे तथा वरवधू का यह संयोग अनुरूप जान पड़ता हो तो देवदत्ता को युवराज पुष्पनन्दी के लिए दीजिए और बतलाइए कि इसके लिए आपको क्या शुल्क-उपहार दिया जाय ? उन आभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों के इस कथन को सूनकर दत्त बोले–'देवानुप्रियो ! मेरे लिए यही बड़ा शुल्क है कि महाराज वैश्रमणदत्त मेरी इस बालिका को ग्रहण कर मुझे अनुगृहीत कर रहे हैं ।' तदनन्तर दत्त गाथापति ने उन अन्तरङ्ग राजपुरुषों का पुष्प, गंध, माला तथा अलङ्कारादि से यथोचित सत्कार-सम्मान किया और उन्हें विसर्जित किया । वे आभ्यन्तर स्थानीय पुरुष जहाँ वैश्रमणदत्त राजा था वहाँ आए और उन्होंने वैश्रमण राजा को उक्त सारा वृत्तान्त निवेदित किया ।

तदनन्तर किसी अन्य समय दत्त गाथापति शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र व मुहूर्त्त में विपुल अशनादिक सामग्री तैयार करवाता है और मित्र, ज्ञाति, निजक स्वजन सम्बन्धी तथा परिजनों को आमन्त्रित कर यावत् स्नानादि करके दुष्ट स्वप्नादि के फल को विनष्ट करने के लिए मस्तक पर तिलक व अन्य माङ्गलिक कार्य करके सुखप्रद आसन पर स्थित हो उस विपुल अशनादिक का मित्र, ज्ञाति, स्वजन, सम्बन्धी व परिजनों के साथ आस्वादन, विस्वादन करने के अनन्तर उचित स्थान पर बैठ आचान्त, चोक्ष, अतः परम शुचिभूत होकर मित्र,

ज्ञाति, निजक का विपुल पुष्प, माला, गन्ध, वस्त्र, अलङ्कार आदि से सत्कार करता है, सन्मान करता है । देवदत्ता-नामक अपनी पुत्री को स्नान करवा कर यावत् शारीरिक आभूषणों द्वारा उसके शरीर को विभूषित कर पुरुषसहस्र-वाहिनी में बिठाता है । बहुत से मित्र व ज्ञातिजनों आदि से घिरा हुआ सर्व प्रकार के ठाठ-ऋद्धि से तथा वादित्र-ध्वनि के साथ रोहीतक नगरके बीचों बीच होकर जहाँ वैश्रमण राजा का घर था और जहाँ वैश्रमण राजा था, वहाँ आकर हाथ जोड़कर उसे बधाया । वैश्रमण राजा को देवदत्ता कन्या अर्पण कर दी ।

तब राजा वैश्रमण लाई हुई उस देवदत्ता दारिका को देखकर बड़े हर्षित हुए और विपुल अशनादिक तैयार कराया और मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी व परिजनों को आमंत्रित कर उन्हें भोजन कराया । उनका पुष्प, वस्त्र, गंध, माला व अलङ्कार आदि से सत्कार-सन्मान किया । तदनन्तर कुमार पुष्पनन्दी और कुमारी देवदत्ता को पट्टक-पर बैठाकर श्वेत व पीत अर्थात् चाँदी सोने के कलशों से स्नान कराते हैं । सुन्दर वेशभूषा से सुसज्जित करते हैं । अग्निहोम कराते हैं । बाद में कुमार पुष्पनन्दी को कुमारी देवदत्ता का पाणिग्रहण कराते हैं । तदनन्तर वह वैश्रमणदत्त नरेश पुष्पनन्दी व देवदत्ता का सम्पूर्ण ऋद्धि यावत् महान वाद्य-ध्वनि और ऋद्धिसमुदाय व सन्मान-समुदाय के साथ विवाह रचाते हैं । तदनन्तर देवदत्ता के माता-पिता तथा उनके साथ आने वाले अन्य अनेक मित्रजनों, ज्ञातिजनों, निजकजनों, स्वजनों, सम्बन्धीजनों और परिजनों का भी विपुल अशनादिक तथा वस्त्र, गन्ध, माला और अलङ्कारादि से सत्कार व सन्मान करने के बाद उन्हें बिदा करते हैं । राजकुमार पुष्पनन्दी श्रेष्ठिपुत्री देवदत्ता के साथ उत्तम प्रासाद में विविध प्रकार के वाद्यों और जिनमें मृदङ्ग बज रहे हैं, ऐसे ३२ प्रकार के नाटकों द्वारा उपगीयमान–प्रशंसित होते सानंद मनुष्य संबंधी शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंधरूप भोग भोगते हुए समय बिताने लगे ।

कुछ समय बाद महाराजा वैश्रमण कालधर्म को प्राप्त हो गए । उनकी मृत्यु पर शोकग्रस्त पुष्पनन्दी ने बड़े समारोह के साथ उनका निस्सरण किया यावत् मृतक-कर्म करके राजसिंहासन पर आरूढ़ हुए यावत् युवराज से राजा बन गए । पुष्पनन्दी राजा अपनी माता श्रीदेवी का परम भक्त था । प्रतिदिन माता श्रीदेवी जहाँ भी हों वहाँ आकर श्रीदेवी के चरणों में प्रणाम करके शतपाक और सहस्रपाक तैलों की मालिश करवाता था । अस्थि को सुख देने वाले, माँस को सुखकारी, त्वचा की सुखप्रद और दोनों को सुखकारी ऐसी चार प्रकार की अंगमर्दन क्रिया से सुखशान्ति पहुँचाता था । सुगन्धित गन्धवर्तक से उद्वर्तन करवाता पश्चात् उष्ण, शीत और सुगन्धित जल से स्नान करवाता, फिर विपुल अशनादि चार प्रकार का भोजन कराता । इस प्रकार श्रीदेवी के नहा लेने यावत् अशुभ स्वप्नादि के फल को विफल करने के लिए मस्तक पर तिलक व अन्य माङ्गलिक कार्य करके भोजन कर लेने के अनन्तर अपने स्थान पर आ चूकने पर और वहाँ पर कुल्ला तथा मुखगत लेप को दूर कर परम शुद्ध हो सुखासन पर बैठ जाने के बाद ही पुष्पनन्दी स्नान करता, भोजन करता था । तथा फिर मनुष्य सम्बन्धी उदार भोगों का उपभोग करता हुआ समय व्यतीत करता था ।

तदनन्तर किसी समय मध्यरात्रि में कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ताओं में उलझी हुई देवदत्ता के हृदय में यह संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'इस प्रकार निश्चय ही पुष्पनन्दी राजा अपनी माता श्रीदेवी का 'यह पूज्या है' इस बुद्धि से परम भक्त बना हुआ है । इस अवक्षेप के कारण मैं पुष्पनन्दी राजा के साथ पर्याप्त रूप से मनुष्य सम्बन्धी विषयभोगों का उपभोग नहीं कर पाती हूँ । इसलिए अब मुझे यही करना योग्य है कि अग्नि, शस्त्र, विष या मन्त्र के प्रयोग से श्रीदेवी को जीवन से व्यारोपित करके महाराज पुष्पनन्दी के साथ उदार-प्रधान मनुष्य सम्बन्धी विषय-भोगों का यथेष्ट उपभोग करूँ ।' ऐसा विचार कर वह श्रीदेवी को मारने के लिए अन्तर, छिद्र और विवर की प्रतीक्षा करती हुई विहरण करने लगी ।

तदनन्तर किसी समय स्नान की हुई श्रीदेवी एकान्त में अपनी शय्या पर सुखपूर्वक सो रही थी । इधर लब्धावकाश देवदत्ता भी जहाँ श्रीदेवी थी वहाँ पर आती है । स्नान व एकान्त में शय्या पर सुखपूर्वक सोई हुई श्रीदेवी को देखकर दिशा का अवलोकन करती है । उसके बाद जहाँ भक्तगृह था वहाँ पर जाकर लोहे के डंडे को

ग्रहण करती है । ग्रहण कर लोहे के उस डंडे को तपाती है, तपाकर अग्नि के समान देदीप्यमान या खिले हुए किंशुक के फूल के समान लाल हुए उस लोहे के दण्ड को संडासी से पकड़कर जहाँ श्रीदेवी थी वहाँ आकर श्रीदेवी के गुदास्थान में घुसेड़ देती है । लोहदंड के घुसेड़ने से बड़े जोर के शब्दों से चिल्लाती हुई श्रीदेवी कालधर्म से संयुक्त हो गई–मृत्यु को प्राप्त हो गई ।

तदनन्तर उस श्रीदेवी की दासियाँ भयानक चीत्कार शब्दों को सूनकर अवधारण कर जहाँ श्रीदेवी थी वहाँ आती हैं और वहाँ से देवदत्ता देवी को नीकलती हुई देखती हैं । जिधर श्रीदेवी सोई हुई थी वहाँ आकर श्रीदेवी को प्राणरहित, चेष्टारहित देखती हैं । देखकर–'हा ! हा ! बड़ा अनर्थ हुआ' इन प्रकार कहकर रुदन, आक्रन्दन तथा विलाप करती हुई, महाराजा पुष्पनन्दी से इस प्रकार निवेदन करती हैं–'निश्चय ही हे स्वामिन् ! श्रीदेवी को देवदत्ता देवी ने अकाल में ही जीवन से पृथक् कर दिया–तदनन्तर पुष्पनन्दी राजा उन दासियों से इस वृत्तान्त को सून समझ कर महान् मातृशोक से आक्रान्त होकर परशु से काटे हुए चम्पक वृक्ष की भाँति धड़ाम से पृथ्वी-तल पर सर्व अङ्गों से गिर पड़ा ।

तदनन्तर एक मुहूर्त्त के बाद वह पुष्पनन्दी राजा होश में आया । अनेक राजा-नरेश, ईश्वर, यावत् सार्थवाह के नायकों तथा मित्रों यावत् परिजनों के साथ रुदन, आक्रन्दन व विलाप करता हुआ श्रीदेवी का महान ऋद्धि तथा सत्कार के साथ निष्कासन कृत्य करता है । तत्पश्चात् क्रोध के आवेश में रुष्ट, कुपित, अतीव क्रोधाविष्ट तथा लाल-पीला होता हुआ देवदत्ता देवी को राजपुरुषों से पकड़वाता है । पकड़वाकर इस पूर्वोक्त विधान से 'यह वध्या है' ऐसी राजपुरुषों को आज्ञा देता है । इस प्रकार निश्चय ही, हे गौतम ! देवदत्ता देवी अपने पूर्वकृत् अशुभ पापकर्मों का फल पा रही हैं । अहो भगवन् ! देवदत्ता देवी यहाँ से काल मास में काल करके कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ? हे गौतम ! देवदत्ता देवी ८० वर्ष की परम आयु भोग कर काल मास में काल करके इस रत्नप्रभा नामक नरक में नारक पर्याय में उत्पन्न होगी । शेष संसारभ्रमण पूर्ववत् करती हुई यावत् वनस्पति अन्तर्गत निम्ब आदि कटु-वृक्षों तथा कटुदुग्ध वाले अकादि पौधों में लाखों बार उत्पन्न होगी । तदनन्तर वहाँ से नीकलकर गङ्गपुर नगर में हंस रूप से उत्पन्न होगी । वहाँ शाकुनिकों द्वारा वध किए जान पर वह गङ्गपुर में ही श्रेष्ठिकुल में पुत्ररूपमें जन्म लेगी । वहाँ उसका जीव सम्यक्त्व को प्राप्त कर सौधर्म नामक प्रथम देवलोकमें उत्पन्न होगा । वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्रमें उत्पन्न होगा । वहाँ चारित्र ग्रहण कर यथावत् पालन कर सिद्धि प्राप्त करेगा । निक्षेप पूर्ववत् ।

अध्ययन-९-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-१० – अंजू

सूत्र - ३४

अहो भगवन् ! इत्यादि, उत्क्षेप पूर्ववत् । हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में वर्द्धमानपुर नगर था । वहाँ विजयवर्द्धमान नामक उद्यान था । उसमें मणिभद्र यक्ष का यक्षायतन था । वहाँ विजयमित्र राजा था । धनदेव नामक एक सार्थवाह–रहता था जो धनाढ्य और प्रतिष्ठित था । उसकी प्रियङ्गु नाम की भार्या थी । उनकी उत्कृष्ट शरीर वाली सुन्दर अञ्जू नामक एक बालिका थी । भगवान् महावीर पधारे यावत् परिषद् धर्मदेशना सूनकर वापिस चली गई ।

उस समय भगवान के ज्येष्ठ शिष्य श्री गौतमस्वामी यावत् भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए विजयमित्र राजा के घर की अशोकवाटिका के समीप से जाते हुए सूखी, भूखी, निर्मांस किटि-किटि शब्द से युक्त अस्थिचर्मावनद्ध तथा नीली साड़ी पहने हुए, कष्टमय, करुणोत्पादक, दीनतापूर्ण वचन बोलती हुई एक स्त्री को देखते हैं । विचार करते हैं। शेष पूर्ववत् समझना । यावत् गौतम स्वामी पूछते हैं–'भगवन् ! यह स्त्री पूर्वभव में कौन थी ?' इसके उत्तर में भगवान ने कहा–हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप अन्तर्गत भारत वर्ष में इन्द्रपुर नगर था । वहाँ इन्द्रदत्त राजा था । इसी नगर में पृथ्वीश्री गणिका रहती थी । इन्द्रपुर नगर में वह पृथ्वीश्री गणिका अनेक इश्वर, तलवर यावत् सार्थवाह आदि लोगों को चूर्णादि के प्रयोगों से वशवर्ती करके मनुष्य सम्बन्धी उदार-मनोज्ञ कामभोगों का यथेष्ट रूप में उपभोग का यथेष्ट रूप में उपभोग करती हुई समय व्यतीत कर रही थी ।

तदनन्तर एतत्कर्मा एतत्प्रधान एतद्विद्य एवं एतत्-आचार वाली वह पृथ्वीश्री गणिका अत्यधिक पाप-कर्मों का उपार्जन कर ३५०० वर्ष के परम आयुष्य को भोगकर कालमास में काल करके छट्ठी नरकभूमि में २२ सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकियों में नारक रूप से उत्पन्न हुई । वहाँ से नीकल कर इसी वर्धमानपुर नगर में वह धनदेव नामक सार्थवाह की प्रियङ्गु भार्या की कोख से कन्या रूप में उत्पन्न हुई । तदनन्तर उस प्रियङ्गु भार्या ने नौ मास पूर्ण होने पर उस कन्या को जन्म दिया और उसका नाम अञ्जुश्री रखा । उसका शेष वर्णन देवदत्ता की तरह जानना ।

तदनन्तर महाराज विजयमित्र अश्वक्रीड़ा के निमित्त जाते हुए राजा वैश्रमणदत्त की भाँति ही अञ्जुश्री को देखते हैं और अपने ही लिए उसे तेतलीपुत्र अमात्य की तरह माँगते हैं । यावत् वे अंजुश्री के साथ उन्नत प्रासादों में सानन्द विहरण करते हैं । किसी समय अञ्जुश्री के शरीर में योनिशूल नामक रोग का प्रादुर्भाव हो गया । यह देखकर विजय नरेश ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर कहा–'तुम लोग वर्धमानपुर नगर में जाओ और जाकर वहाँ के शृंगाटिक–त्रिपथ, चतुष्पथ यावत् सामान्य मार्गों पर यह उद्घोषणा करो कि–देवी अञ्जुश्री को योनिशूल रोग उत्पन्न हो गया है । अतः जो कोई वैद्य या वैद्यपुत्र, जानकार या जानकार का पुत्र, चिकित्सक या उसका पुत्र रोग को उपशान्त कर देगा, राजा विजयमित्र उसे विपुल धन-सम्पत्ति प्रदान करेंगे ।' कौटुम्बिक पुरुष राजाज्ञा से उक्त उद्घोषणा करते हैं ।

तदनन्तर इस प्रकार की उद्घोषणा को सूनकर नगर के बहुत से अनुभवी वैद्य, वैद्यपुत्र आदि चिकित्सक विजयमित्र राजा के यहाँ आते हैं । अपनी औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी बुद्धियों के द्वारा परिणाम को प्राप्त कर विविध प्रयोगों के द्वारा देवी अंजूश्री के योनिशूल को उपशान्त करने का प्रयत्न करते हैं, परन्तु उनके उपयोगों से अंजूश्री का योनिशूल शान्त नहीं हो पाया । जब वे अनुभवी वैद्य आदि अंजूश्री के योनिशूल को शमन करने में विफल हो गये तब खिन्न, श्रान्त एवं हतोत्साह होकर जिधर से आए थे उधर ही चले गए । तत्पश्चात् देवी अंजूश्री उस योनिशूलजन्य वेदना से अभिभूत हुई सूखने लगी, भूखी रहने लगी और माँस रहित होकर कष्ट-हेतुक, करुणोत्पादक और दीनतापूर्ण शब्दों में विलाप करती हुई समय-यापन करने लगी । हे गौतम ! इस प्रकार रानी अंजूश्री अपने पूर्वोपार्जित पापकर्मों के फल का उपभोग करती हुई जीवन व्यतीत कर रही है ।

अहो भगवन् ! अंजू देवी काल करके कहाँ जाएगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ? हे गौतम ! अंजू देवी ६० वर्ष की परम आयु को भोगकर काल करके इस रत्नप्रभा नामक पृथ्वी में नारकी रूप से उत्पन्न होगी । उसका शेष संसार प्रथम अध्ययन की तरह जानना । यावत् वनस्पतिगत निम्बादि कटुवृक्षों तथा कटुदुग्ध वाले अर्क आदि पौधों में लाखों बार उत्पन्न होगी । वहाँ की भव-स्थिति को पूर्ण कर इसी सर्वतोभद्र नगर में मयूर के रूप में जन्म लेगी । वहाँ वह मोर व्याधों के द्वारा मारे जाने पर सर्वतोभद्र नगर के ही एक श्रेष्ठिकुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगी । वहाँ बालभाव को त्याग कर, युवावस्था को प्राप्त कर, विज्ञान की परिपक्व अवस्था को प्राप्त करते हुए वह तथारूप स्थविरों से बोधिलाभ को प्राप्त करेगा । तदनन्तर दीक्षा ग्रहण कर मृत्यु के बाद सौधर्म देवलोक में उत्पन्न होगा । भगवन् ! देवलोक की आयु तथा स्थिति पूर्ण हो जाने के बाद वह कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जाएगा । वहाँ उत्तम कुल में जन्म लेगा । यावत् सिद्ध बुद्ध सब दुःखों का अन्त करेगा । हे जम्बू! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने दुःखविपाक नामक दशम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादन किया है । भगवन् ! आपका यह कथन सत्य है ।

अध्ययन-१०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

श्रुतस्कन्ध–१ पूर्ण

* श्रुतस्कन्ध–२ *

सूत्र – ३५, ३६

उस काल तथा उस समय राजगृह नगर में गुणशील नामक चैत्य में श्रीसुधर्मा स्वामी पधारे । उनकी पर्युपासना में संलग्न रहे हुए श्री जम्बू स्वामी ने प्रश्न किया–प्रभो ! यावत् मोक्षरूप परम स्थिति को संप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि दुःखविपाक का यह अर्थ प्रतिपादित किया, तो यावत् सुखविपाक का क्या अर्थ प्रतिपादित किया है ? अनगार श्रीसुधर्मा स्वामी बोले–हे जम्बू ! यावत् निर्वाणप्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने सुखविपाक के दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं । वे इस प्रकार हैं– सुबाहु, भद्रनंदी, सुजात, सुवासव, जिनदास, धनपति, महाबल, भद्रनंदी, महचंद्र और वरदत्त ।

अध्ययन-१ – सुबाहुकुमार

सूत्र - ३७

हे भदन्त ! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने यदि सुखविपाक के सुबाहुकुमार आदि दस अध्ययन प्रतिपादित किए हैं तो हे भगवन् ! सुख-विपाक के प्रथम अध्ययन का क्या अर्थ कथन किया है ? श्रीसुधर्मा स्वामी ने श्रीजम्बू अनगार के प्रति इस प्रकार कहा–हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में हस्तिशीर्ष नामका एक बड़ा ऋद्ध-भवनादि के आधिक्य से युक्त, स्तिमित-स्वचक्र-परचक्र के भय से मुक्त, समृद्ध-धन-धान्यादि से परिपूर्ण नगर था । उस नगर के बाहर ईशान कोण में सब ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फल-पुष्पादि से युक्त पुष्पकरण्डक नाम का एक उद्यान था । उस उद्यान में कृतवनमाल-प्रिय नामक यक्ष का यक्षायतन था । जो दिव्य-प्रधान एवं सुन्दर था । वहाँ अदीनशत्रु राजा था, जो कि राजाओं में हिमालय आदि पर्वतों के समान महान था। अदीनशत्रु नरेश के अन्तःपुर में धारिणीप्रमुख एक हजार रानियाँ थीं ।

तदनन्तर एक समय राजकुलउचित वासभवन में शयन करती हुई धारिणी देवी ने स्वप्न में सिंह को देखा । मेघकुमार के समान सुबाहु के जन्म आदि का वर्णन भी जान लेना । यावत् सुबाहुकुमार सांसारिक कामभोगों का उपभोग करने में समर्थ हो गया । तब सुबाहुकुमार के माता-पिता ने उसे बहत्तर कलाओं में कुशल तथा भोग भोगने में समर्थ हुआ जाना, और उसके माता-पिता जिस प्रकार भूषणों में मुकुट सर्वोत्तम होता है, उसी प्रकार महलों में उत्तम पाँच सौ महलों का निर्माण करवाया जो अत्यन्त ऊंचे, भव्य एवं सुन्दर थे । उन प्रासादों के मध्य में एक विशाल भवन तैयार करवाया, इत्यादि सारा वर्णन महाबल राजा ही की तरह जानना । विशेषता यह कि–पुष्पचूला प्रमुख पाँच सौ श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ एक ही दिन में उसका विवाह कर दिया गया । इसी तरह पाँच सौ का प्रीतिदान उसे दिया गया । तदनन्तर सुबाहुकुमार सुन्दर प्रासादों में स्थित, जिसमें मृदंग बजाये जा रहे हैं, ऐसे नाट्यादि से उद्गीयमान होता हुआ मानवोचित मनोज्ञ विषयभोगों का यथारुचि उपभोग करने लगा ।

उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान महावीर हस्तिशीर्ष नगर पधारे । परिषद् नीकली, महाराजा कूणिक के समान अदीनशत्रु राजा भी देशनाश्रवण के लिए नीकला । जमालिकुमार की तरह सुबाहुकुमार ने भी भगवान के दर्शनार्थ प्रस्थान किया । यावत् भगवान् ने धर्म का प्रतिपादन किया, परिषद् और राजा धर्मदेशना सूनकर वापस लौट गए । तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर के निकट धर्मकथा श्रवण तथा मनन करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ सुबाहुकुमार उठकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन, नमस्कार करने के अनन्तर कहने लगा–'भगवन्! में निर्ग्रन्थप्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ यावत् जिस तरह आपके श्रीचरणों में अनेकों राजा, ईश्वर यावत् सार्थवाह आदि उपस्थित होकर, मुंडित होकर तथा गृहस्थावस्था से नीकलकर अनगारधर्म में दीक्षित हुए हैं, वैसे में मुंडित होकर घर त्यागकर अनगार अवस्था को धारण करने में समर्थ नहीं हूँ । मैं पाँच अणुव्रतों तथा सात शिक्षाव्रतों का जिसमें विधान है, ऐसे बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को अंगीकार करना चाहता हूँ । भगवान ने कहा–'जैसे तुमको सुख हो वैसा करो, किन्तु इसमें देर मत करो ।' ऐसा कहने पर सुबाहुकुमार ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समक्ष पाँच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों वाले बारह प्रकार के गृहस्थधर्म को स्वीकार किया ।

तदनन्तर उसी रथ पर सुबाहुकुमार सवार हुआ और वापस चला गया ।

उस काल तथा उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य इन्द्रभूति गौतम अनगार यावत् इस प्रकार कहने लगे–'अहो भगवन् ! सुबाहुकुमार बालक बड़ा ही इष्ट, इष्टरूप, कान्त, कान्तरूप, प्रिय, प्रियरूप, मनोज्ञ, मनोज्ञरूप, मनोम, मनोमरूप, सौम्य, सुभग, प्रियदर्शन और सुरूप-सुन्दर रूप वाला है । अहो भगवन् ! यह सुबाहुकुमार साधुजनों को भी इष्ट, इष्टरूप यावत् सुरूप लगता है । भदन्त ! सुबाहुकुमार ने यह अपूर्व मानवीय समृद्धि कैसे उपलब्ध की ? कैसे प्राप्त की ? और कैसे उसके सन्मुख उपस्थित हुई ? सुबाहुकुमार पूर्वभव में कौन था ? यावत् इसका नाम और गोत्र क्या था ? किस ग्राम अथवा बस्ती में उत्पन्न हुआ था ? क्या दान देकर, क्या उपभोग कर और कैसे आचार का पालन करके, किस श्रमण या माहन के एक भी आर्यवचन को श्रवणकर सुबाहुकुमारने ऐसी यह ऋद्धिलब्ध एवं प्राप्त की है, कैसे यह समृद्धि इसके सन्मुख उपस्थित हुई है ?

हे गौतम ! उस काल तथा उस समय में इसी जम्बूद्वीप के अन्तर्गत भारतवर्ष में हस्तिनापुर नाम का एक ऋद्ध, स्तिमित एवं समृद्ध नगर था । वहाँ सुमुख नाम का धनाढ्य गाथापति रहता था । उस काल तथा उस समय उत्तम जाति और कुल से संपन्न यावत् पाँच सौ श्रमणों से परिवृत्त हुए धर्मघोष नामक स्थविर क्रमपूर्वक चलते हुए तथा ग्रामानुग्राम विचरते हुए हस्तिनापुर नगर के सहस्राम्रवन नामक उद्यान में पधारे । वहाँ यथाप्रतिरूप अवग्रह को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे ।

उस काल और उस समय में धर्मघोष स्थविर के अन्तेवासी उदार-प्रधान यावत् तेजोलेश्या को संक्षिप्त किये हुए सुदत्त नाम के अनगार एक मास का क्षमण-तप करते हुए पारणा करते हुए विचरण कर रहे थे । एक बार सुदत्त अनगार मास-क्षमण पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय करते हैं, यावत् गौतम स्वामी समान वैसे ही वे धर्मघोष स्थविर से पूछते हैं, यावत् भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए सुमुख गाथापति के घर में प्रवेश करते हैं । तदनन्तर वह सुमुख गाथापति सुदत्त अनगार को आते हुए देखकर अत्यन्त हर्षित और प्रसन्न होकर आसन से उठता है । पाद-पीठ से नीचे ऊतरता है । पादुकाओं को छोड़ता है । एक शाटिक उत्तरासंग करता है, उत्तरासंग करने के अनन्तर सुदत्त अनगार के सत्कार के लिए सात-आठ कदम सामने जाता है । तीन बार प्रदक्षिणा करता है, वंदन करता है, नमस्कार करके जहाँ अपना भक्तगृह था वहाँ आकर अपने हाथ से विपुल अशनपान का-आहार का दान दूँगा, इस विचार से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त होता है । वह देते समय भी प्रसन्न होता है और आहारदान के पश्चात् भी प्रसन्नता का अनुभव करता है ।

तदनन्तर उस सुमुख गाथापति के शुद्ध द्रव्य से तथा त्रिविध, त्रिकरण शुद्धि से स्वाभाविक उदारता सरलता एवं निर्दोषता से सुदत्त अनगार के प्रतिलम्भित होने पर आहार के दान से अत्यन्त प्रसन्नता को प्राप्त हुए सुमुख गाथापति ने संसार को बहुत कम कर दिया और मनुष्य आयुष्य का बन्ध कर दिया । उसके घर में सुवर्णवृष्टि, पाँच वर्णों के फूलों की वर्षा, वस्त्रों का उत्क्षेप, देवदुन्दुभियों का बजना तथा आकाश में 'अहोदान' इस दिव्य उद्घोषणा का होना–ये पाँच दिव्य प्रकट हुए । हस्तिनापुर के त्रिपथ यावत् सामान्य मार्गों में अनेक मनुष्य एकत्रित होकर आपस में एक दूसरे से कहते थे–हे देवानुप्रियो ! धन्य है सुमुख गाथापति ! सुमुख गाथापति सुलक्षण है, कृतार्थ है, उसने जन्म और जीवन का सफल प्राप्त किया है जिसे इस प्रकार की यह माननीय ऋद्धि प्राप्त हुई । धन्य है सुमुख गाथापति !

तदनन्तर वह सुमुख गाथापति सैकड़ों वर्षों की आयु का उपभोग कर काल-मास में काल करके इसी हस्तिशीर्षक नगर में अदीनशत्रु राजा की धारिणी देवी की कुक्षि में पुत्ररूप में उत्पन्न हुआ । तत्पश्चात् वह धारिणी देवी किञ्चित् सोई और किञ्चित् जागती हुई स्वप्न में सिंह को देखती है । शेष वर्णन पूर्ववत् जानना । यावत् उन प्रासादों में मानव सम्बन्धी उदार भोगों का यथेष्ट उपभोग करता विचरता है । हे गौतम ! सुबाहुकुमार को उपर्युक्त महादान के प्रभाव से इस तरह की मानव-समृद्धि उपलब्ध तथा प्राप्त हुई और उसके समक्ष समुपस्थित हुई है ।

गौतम–प्रभो ! सुबाहुकुमार आपश्री के चरणों में मुण्डित होकर, गृहस्थावास को त्याग कर अनगार धर्म को

ग्रहण करने में समर्थ है ? हाँ गौतम ! है । तदनन्तर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दना व नमस्कार करके संयम तथा तप से आत्मा को भावित करते हुए विहरण करने लगा । तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने किसी अन्य समय हस्तिशीर्ष नगर के पुष्पकरण्डक उद्यानगत कृतवनमाल नामक यक्षायतन से विहार किया और विहार करके अन्य देशों में विचरने लगे । इधर सुबाहुकुमार श्रमणोपासक हो गया । जीव अजीव आदि तत्त्वों का मर्मज्ञ यावत् आहारादि के दान-जन्य लाभ को प्राप्त करता हुआ समय व्यतीत करने लगा ।

तत्पश्चात् किसी समय वह सुबाहुकुमार चतुर्दशी, अष्टमी, उद्दिष्ट-अमावस्या और पूर्णमासी, इन तिथियों में जहाँ पौषधशाला थी–वहाँ आता है । आकर पौषधशाला का प्रमार्जन करता है, उच्चारप्रसवण भूमि की प्रतिलेखना करता है । दर्भसंस्तार बिछाता है । दर्भ के आसन पर आरूढ़ होता है और अट्ठमभक्त ग्रहण करता है । पौषधशाला में पौषधव्रत किये हुए वह, अष्टमभक्त सहित पौषध–अष्टमी, चतुर्दशी आदि पर्व तिथियों में करने योग्य जैन श्रावक का व्रत विशेष–का यथाविधि पालन करता हुआ विहरण करता है ।

तदनन्तर मध्यरात्रि में धर्मजागरण करते हुए सुबाहुकुमार के मन में यह आन्तरिक विचार, चिन्तन, कल्पना, ईच्छा एवं मनोगत संकल्प उठा कि–वे ग्राम आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेट कर्बट, द्रोणमुख, मडम्ब, पट्टन, आश्रम, संबाध और सन्निवेश धन्य हैं जहाँ पर श्रमण भगवान महावीर स्वामी विचरते हैं । वे राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह आदि भी धन्य हैं जो श्रमण भगवान महावीर स्वामी के निकट मुण्डित होकर प्रव्रजित होते हैं । वे राजा, ईश्वर आदि धन्य हैं जो श्रमण भगवान महावीर के पास पञ्चाणुव्रतिक और सप्त शिक्षाव्रतिक उस बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को अङ्गीकार करते हैं । वे राजा ईश्वर आदि धन्य हैं जो श्रमण भगवान महावीर के पास धर्मश्रवण करते हैं । सो यदि श्रमण भगवान महावीर स्वामी पूर्वानुपूर्वी ग्रामानुग्राम विचरते हुए, यहाँ पधारे तो मैं गृह त्याग कर श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास मुण्डित होकर प्रव्रजित हो जाऊं ।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर सुबाहुकुमार के इस प्रकार के संकल्प को जानकर क्रमशः ग्रामानुग्राम विचरते हुए जहाँ हस्तिशीर्ष नगर था, और जहाँ पुष्पकरण्डक नामक उद्यान था, और जहाँ कृतवनमालप्रिय यक्ष का यक्षायतन था, वहाँ पधारे एवं यथा प्रतिरूप–स्थानविशेष को ग्रहण कर संयम व तप से आत्मा को भावित करते हुए अवस्थित हुए । तदनन्तर पर्षदा व राजा दर्शनार्थ नीकले । सुबाहुकुमार भी पूर्व ही की तरह बड़े समारोह के साथ भगवान की सेवा में उपस्थित हुआ । भगवान ने उस परिषद् तथा सुबाहुकुमार को धर्म का प्रतिपादन किया । परिषद् और राजा धर्मदेशना सूनकर वापिस चले गए । सुबाहुकुमार श्रमण भगवान महावीर के पास से धर्म श्रवण कर उसका मनन करता हुआ मेघकुमार की तरह अपने माता-पिता से अनुमति लेता है । तत्पश्चात् सुबाहुकुमार का निष्क्रमण-अभिषेक मेघकुमार ही की तरह होता है । यावत् वह अनगार हो जाता है, ईर्यासमिति का पालक यावत् गुप्त ब्रह्मचारी बन जाता है ।

तदनन्तर सुबाहु अनगार श्रमण भगवान महावीर के तथारूप स्थविरों के पास से सामायिक आदि एकादश अङ्गों का अध्ययन करते हैं । अनेक उपवास, बेला, तेला आदि नाना प्रकार के तपों के आचरण से आत्मा को वासित करके अनेक वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन कर एक मास की संलेखना के द्वारा अपने आपको आराधित कर साठ भक्तों का अनशन द्वारा छेदन कर आलोचना व प्रतिक्रमणपूर्वक समाधि को प्राप्त होकर कालमास में काल करके सौधर्म देवलोक में देव रूप से उत्पन्न हुए ।

तदनन्तर वह सुबाहुकुमार का जीव सौधर्म देवलोक से आयु, भव और स्थिति के क्षय होने पर व्यवधान रहित देव शरीर को छोड़कर सीधा मनुष्य शरीर को प्राप्त करेगा । शंकादि दोषों से रहित केवली का लाभ करेगा, बोधि उपलब्ध कर तथारूप स्थविरों के पास मुण्डित होकर साधुधर्म में प्रव्रजित हो जाएगा । वहाँ वह एक अनेक वर्षों तक श्रामण्यपर्याय का पालन करेगा और आलोचना तथा प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त होगा । काल धर्म को प्राप्त कर सनत्कुमार नामक तीसरे देवलोक में देवता के रूप में उत्पन्न होगा ।

वहाँ से पुनः मनुष्य भव प्राप्त करेगा । दीक्षित होकर यावत् महाशुक् नामक देवलोक में उत्पन्न होगा । वहाँ से फिर मनुष्य-भव में जन्म लेगा और दीक्षित होकर यावत् आनत नामक नवम देवलोक में उत्पन्न होगा । वहाँ की भवस्थिति को पूर्ण कर मनुष्य-भव में आकर दीक्षित हो आरण नाम के ग्यारहवे देवलोक में उत्पन्न होगा । वहाँ से च्यव कर मनुष्य-भव को धारण करके अनगार-धर्म का आराधन कर शरीरान्त होने पर सर्वार्थसिद्ध नामक विमान में उत्पन्न होगा । वहाँ से सुबाहुकुमार का वह जीव व्यवधानरहित महाविदेह क्षेत्र में सम्पन्न कुलों में से किसी कुल में उत्पन्न होगा । वहाँ दृढ़प्रतिज्ञ की भाँति चरित्र प्राप्त कर सिद्धपद को प्राप्त करेगा । हे जम्बू ! यावत् मोक्षसम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर ने सुखविपाक अंग के प्रथम अध्ययन का यह अर्थ प्रतिपादित किया है । ऐसा मैं कहता हूँ।

अध्ययन-१-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

अध्ययन-२ – भद्रनंदी

सूत्र - ३८

द्वितीय अध्ययन की प्रस्तावना पूर्ववत् समझना । हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में ऋषभपुर नाम का नगर था । वहाँ स्तूपकरण्डक उद्यान था । धन्य यक्ष का यक्षायतन था । वहाँ धनावह राजा था । सरस्वती रानी थी । महारानी का स्वप्न-दर्शन, स्वप्न कथन, बालक का जन्म, बाल्यावस्था में कलाएं सीखकर यौवन को प्राप्त होना, विवाह होना, दहेज देना और ऊंचे प्रासादों में अभीष्ट उपभोग करना, आदि सभी वर्णन सुबाहुकुमार ही की तरह जानना चाहिए । अन्तर केवल इतना है कि बालक का नाम 'भद्रनन्दी' था । उसका श्रीदेवी प्रमुख पाँच सौ देवियों के साथ विवाह हुआ । महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ, भद्रनन्दी ने श्रावकधर्म अंगीकार किया । पूर्वभव–महाविदेह क्षेत्र के अन्तर्गत पुण्डरीकिणी नाम की नगरी में विजय नामक कुमार था । उसके द्वारा भी युगबाहु तीर्थंकर को प्रतिलाभित करना–उससे मनुष्य आयुष्य का बन्ध होना, यहाँ भद्रनन्दी के रूप में जन्म लेना, यह सब सुबाहुकुमार की तरह जान लेना । यावत् वह महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, निर्वाण पद को प्राप्त करेगा व सर्व दुःखों का अन्त करेगा । निक्षेप पूर्ववत् ।

अध्ययन-२-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

~~~~~~

अध्ययन-३ – सुजातकुमार

सूत्र - ३९

हे जम्बू ! वीरपुर नगर था । मनोरम उद्यान था । महाराज वीरकृष्णमित्र थे । श्रीदेवी रानी थी । सुजात कुमार था । बलश्री प्रमुख ५०० श्रेष्ठ राज-कन्याओं के साथ सुजातकुमार का पाणिग्रहण हुआ । भगवान महावीर पधारे । सुजातकुमार ने श्रावक-धर्म स्वीकार किया । पूर्वभव वृत्तान्त कहा–इषुकार नगर था । वहाँ ऋषभदत्त गाथापति था । पुष्पदत्त सागर अनगार को निर्दोष आहार दान दिया, शुभ मनुष्य आयुष्य का बन्ध हुआ । आयु पूर्ण होने पर यहाँ सुजातकुमार के रूप में उत्पन्न हुआ यावत् महाविदेह क्षेत्र में चारित्र ग्रहण कर सिद्ध पद को प्राप्त करेगा ।

अध्ययन-३-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

~~~~~~

अध्ययन-४ – सुवासवकुमार

सूत्र - ४०

हे जम्बू ! विजयकुमार नगर था । नन्दनवन उद्यान था । अशोक यक्ष का यक्षायतन था । राजा वासवदत्त था । कृष्णादेवी रानीथी । सुवासकुमार राजकुमार था । भद्रा-प्रमुख ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओं से विवाह हुआ । भगवान महावीर पधारे । सुवासवकुमार ने श्रावकधर्म स्वीकार किया । पूर्वभव–गौतम ! कौशाम्बी नगरी थी। धनपाल राजा था । उसने वैश्रमणभद्र अनगार को निर्दोष आहार का दान दिया, उसके प्रभाव से मनुष्य-आयुष्य का बन्ध हुआ यावत् यहाँ सुवासकुमार के रूप में जन्म लिया है, यावत् इसी भव में सिद्धि-गत को प्राप्त हुए ।

अध्ययन-४-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

~~~~~~

अध्ययन-५ – जिनदास

सूत्र - ४१

हे जम्बू ! सौगन्धिका नगरी थी । नीलाशोक उद्यान था । सुकाल यक्ष का यक्षायतन था । अप्रतिहत राजा थे । सुकृष्णा उनकी भार्या थी । पुत्र का नाम महाचन्द्रकुमार था । अर्हद्दता नाम की भार्या थी । जिनदास नाम का पुत्र था । भगवान महावीर का पदार्पण हुआ । जिनदास ने द्वादशविध गृहस्थ धर्म स्वीकार किया । पूर्वभव–हे गौतम ! माध्यमिका नगरी थी । महाराजा मेघरथ थे । सुधर्मा अनगार को महाराजा मेघरथ ने भावपूर्वक निर्दोष आहार दान दिया, उससे मनुष्य भव के आयुष्य का बन्ध किया और यहाँ पर जन्म लेकर यावत् इसी जन्म में सिद्ध हुआ । निक्षेप–पूर्ववत् ।

अध्ययन-५-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

~~~~~~

अध्ययन-६ – धनपति

सूत्र - ४२

हे जम्बू ! कनकपुर नगर था । श्वेताशोकनामक उद्यान था । वीरभद्र यक्ष का यक्षायतन था । राजा प्रियचन्द्र था, रानी सुभद्रादेवी थी । युवराज वैश्रमणकुमार था । उसका श्रीदेवी प्रमुख ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह हुआ था । महावीर स्वामी पधारे । युवराज के पुत्र धनपति कुमार ने भगवान से श्रावकों के व्रत ग्रहण किए यावत् गौतम स्वामी ने उसके पूर्वभव की पृच्छा की । धनपतिकुमार पूर्वभव में मणिचयिका नगरी का राजा था । उसका नाम मित्र था । उसने संभूतिविजय नामक अनगार को शुद्ध आहार से प्रतिलाभित किया यावत् इसी जन्म में वह सिद्धिगति को प्राप्त हुआ । निक्षेप–पूर्ववत् ।

अध्ययन-६-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

~~~~~~

अध्ययन-७ – महाबल

सूत्र - ४३

हे जम्बू ! महापुर नगर था । रक्ताशोक उद्यान था । रक्तपाद यक्ष का आयतन था । महाराज बल राजा था। सुभद्रा देवी रानी थी । महाबल राजकुमार था । उसका रक्तवती प्रभृति ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ विवाह किया गया । महावीर स्वामी पधारे । महाबल राजकुमार का भगवान से श्रावकधर्म अङ्गीकार करना, पूर्वभव पृच्छा–गौतम ! मणिपुर नगर था । वहाँ नागदेव गाथापति था । इन्द्रदत्त अनगार को निर्दोष आहार का दान देकर प्रतिलम्भित किया तथा उसके प्रभाव से मनुष्य आयुष्य का बन्ध करके यहाँ पर महाबल के रूप में उत्पन्न हुआ । तदनन्तर उसने श्रमणदीक्षा स्वीकार कर यावत् सिद्धगति को प्राप्त किया । निक्षेप–पूर्ववत् कर लेना चाहिए ।

अध्ययन-७-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

~~~~~~

अध्ययन-८ – भद्रनंदी

सूत्र - ४४

सुघोष नगर था । देवरमण उद्यान था । वीरसेन यक्ष का यक्षायतन था । अर्जुन राजा था । तत्त्ववती रानी थी और भद्रानन्दी राजकुमार था । उसका श्रीदेवी आदि ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ । भगवान महावीर का पदार्पण हुआ । भद्रनन्दी ने श्रावकधर्म अङ्गीकार किया । पूर्वभव के सम्बन्ध में पृच्छा–हे गौतम ! महाघोष नगर था । वहाँ धर्मघोष गाथापति था । धर्मसिंह नामक मुनिराज को निर्दोष आहार दान से प्रतिलाभित कर मनुष्य-भव के आयुष्य का बन्ध किया और यहाँ पर उत्पन्न हुआ । यावत् साधुधर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके श्री भद्रानन्दी अनगार ने बन्धे हुए कर्मों का आत्यंतिक क्षय कर मोक्ष पद को प्राप्त किया । निक्षेप–पूर्ववत् ।

अध्ययन-८-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

~~~~~~

अध्ययन-९ – महाचंद्र

सूत्र - ४५

हे जम्बू ! चम्पा नगरी थी । पूर्णभद्र उद्यान था । पूर्णभद्र यक्ष का यक्षायतन था । राजा दत्त था और रानी रक्तवती थी । महाचन्द्र राजकुमार था । उसका श्रीकान्ता प्रमुख ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ । भगवान महावीर का पदार्पण हुआ । महाचन्द्र ने श्रावकों के बारह व्रतों को ग्रहण किया । पूर्वभव पृच्छा–हे गौतम! चिकित्सिका नगरी थी । महाराजा जितशत्रु थे । धर्मवीर्य अनगार को निर्दोष आहार पानी से प्रतिलम्भित किया, फलतः मनुष्य-आयुष्य को बान्धकर यहाँ उत्पन्न हुआ । यावत् श्रामण्य-धर्म का यथाविधि अनुष्ठान करके महाचन्द्र मुनि बन्धे हुए कर्मों का समूल क्षय कर परमपद को प्राप्त हुए । निक्षेप–पूर्ववत् ।

अध्ययन-९-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

~~~~~~

अध्ययन-१० – वरदत्त

सूत्र - ४६

हे जम्बू ! उस काल तथा उस समय में साकेत नाम का नगर था । उत्तरकुरु उद्यान था । उसमें पाशमृग यक्ष का यक्षायतन था । राजा मित्रनन्दी थे । श्रीकान्ता रानी थी । वरदत्त राजकुमार था । कुमार वरदत्त का वरसेना आदि ५०० श्रेष्ठ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था । भगवान महावीर का पदार्पण हुआ । वरदत्त ने श्रावकधर्म अङ्गीकार किया । पूर्वभव पृच्छा–हे गौतम ! शतद्वार नगर था । विमलवाहन राजा था । एकदा धर्मरुचि अनगार को आते हुए देखकर उत्कट भक्तिभावों से निर्दोष आहार का दान कर प्रतिलाभित किया । शुभ मनुष्य आयुष्य का बन्ध किया । यहाँ उत्पन्न हुआ ।

शेष वृत्तान्त सुबाहुकुमार की तरह ही समझना । यावत् प्रव्रज्या ली । वरदत्त कुमार का जीव स्वर्गीय तथा मानवीय, अनेक भवों को धारण करता हुआ अन्त में सर्वार्थसिद्ध विमान में उत्पन्न होगा, वहाँ से च्यव कर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न हो, दृढ़प्रतिज्ञ की तरह सिद्धगति को प्राप्त करेगा । हे जम्बू ! इस प्रकार यावत् मोक्ष-सम्प्राप्त श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने सुखविपाक के दशम अध्ययन का अर्थ प्रतिपादन किया है, ऐसा मैं कहता हूँ । भगवन् ! आपका सुखविपाक का कथन, जैसे कि आपने फरमाया है, वैसा ही है, वैसा ही है ।

अध्ययन-१०-का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

श्रुतस्कन्ध–२ का मुनि दीपरत्नसागर कृत् हिन्दी अनुवाद पूर्ण

११ विपाकश्रुत–अंगसूत्र–११–पूर्ण

नमो नमो निम्मलदंसणस्स

પૂજ્યપાદ્ શ્રી આનંદ–ક્ષમા–લલિત–સુશીલ–સુધર્મસાગર ગુરૂભ્યો નમ:

११

विपाकश्रुत

आगमसूत्र हिन्दी अनुवाद

[अनुवादक एवं संपादक]

आगम दीवाकर मुनि दीपरत्नसागरजी

[M.Com. M.Ed. Ph.D. श्रुत महर्षि]

વેબ સાઈટ:– (1) www.jainelibrary.org (2) deepratnasagar.in

ઈમેલ એડ્રેસ:- jainmunideepratnasagar@gmail.com મોબાઈલ 09825967397